



उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखंड का लोक साहित्य (भाग एक)

तृतीय सेमेस्टर 605



विशेषज्ञ समिति

प्रो. एच.पी. शुक्ला
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्तविश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो. सत्यकाम
हिन्दी विभाग
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो.आर.सी.शर्मा
हिन्दी विभाग
अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़

डा. राजेन्द्र कैड़ा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डा. शशांक शुक्ला
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन

डा. राजेन्द्र कैड़ा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डा. शशांक शुक्ला
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. मृदुल जोशी हिंदी विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड	1, 2, 3
डॉ. हेमचन्द्र दुबे हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गरूड़, कौसानी, उत्तराखण्ड	4, 5, 6, 7, 8

कापीराइट@उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: 2022

प्रकाशक: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल -263139

मुद्रक : प्रीमियर प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल -263139

ISBN - 978-93-84632-75-5

विषय सूची

तृतीय सेमेस्टर 605

खण्ड 1 लोक साहित्य: स्वरूप एवं प्रवृत्ति	पृष्ठ संख्या
इकाई 1 लोक : स्वरूप एवं प्रवृत्ति	1-7
इकाई 2 लोक साहित्य : स्वरूप एवं प्रवृत्ति	8-43
इकाई 3 लोक साहित्य के संरक्षण की समस्या एवं समाधान	44-55
खण्ड 2 कुमाऊँनी लोक साहित्य का परिचय	पृष्ठ संख्या
इकाई 4 कुमाऊँनी लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप	56-71
इकाई 5 कुमाऊँनी लोक गीत इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य	72-93
इकाई 6 कुमाऊँनी लोक गाथाएँ : इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य	94-115
इकाई 7 कुमाऊँनी लोक कथाएँ : इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य	116-131
इकाई 8 कुमाऊँनी लोक साहित्य : अन्य प्रवृत्तियाँ	132-144

इकाई 1 लोक स्वरूप एवं प्रवृत्ति

इकाई की रूपरेखा

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 लोक का स्वरूप एवं प्रवृत्ति
 - 1.3.1 प्राचीन भारतीय साहित्य में लोक शब्द की उपस्थिति
 - 1.3.2 पाश्चात्य साहित्य में लोक शब्द की उपस्थिति
 - 1.3.3 'फोक' शब्द के विविध अर्थ
- 1.4 'लोक' शब्द की परिभाषा
- 1.5 सारांश
- 1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 1.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 1.8 सहायक उपयोग पाठ्य सामग्री
- 1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

लोक शब्द अत्यंत प्राचीन है। समान्यतः यह साधारण जनता का पर्यायवाची है लेकिन प्राचीन भारतीय साहित्य में यह जीव तथा स्थान के अर्थों में भी लिया गया है। पाणिनी इत्यादि महर्षियों ने वेद से पृथक् लोक सत्ता को स्वीकारा है। वस्तुतः लोक शब्द अनेक रूप में व्यवहृत होता रहा है। प्रस्तुत संदर्भ में लोक का अर्थ सामान्य जनता के अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप

1. लोक शब्द के विविध अर्थ और परिभाषा से परिचित होंगे।
2. विश्व फलक में लोक के अर्थ को हृदयंगम करने की चेष्टा करेंगे।

1.3 लोक का स्वरूप एवं प्रवृत्ति

‘लोक’ शब्द संस्कृत के ‘लोक’ (दर्शन) धातु से ‘घञ्’ प्रत्यय लगकर बना है। लट् लकार, अन्य पुरुष, एक वचन में इसका रूप ‘लोकते’ बनता है। अतः ‘लोक’ शब्द का अर्थ है- ‘देखने वाला’। इस प्रकार से देखने वाला समस्त जन समुदाय ‘लोक’ शब्द से अभिहित होगा। ऋग्वेद में यह शब्द अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है। जनसाधारण हेतु प्रयुक्त लोक के लिए जन शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद में ‘पुरुष सूक्त’ में प्रयुक्त ‘लोक’ शब्द ‘जीव’ और ‘स्थान’- इन दो अर्थों में आया है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में ‘लोक’ शब्द प्रत्येक वस्तु में परिव्याप्त व सर्वप्रसारित रूप में देखा जा सकता है। महर्षि पाणिनी ने भी वेद से पृथक् लोक सत्ता स्वीकार की है। भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र में लोकधर्मी प्रवृत्तियों की चर्चा करते हुए लोक की उपस्थिति स्वीकारी है। महर्षि व्यास ने भी महाभारत में जन सामान्य के रूप में ‘लोक’ शब्द का प्रयोग किया है।

1.3.1 प्राचीन भारतीय साहित्य में लोक शब्द की उपस्थिति

प्राचीन भारतीय साहित्य में भी ‘शिष्ट’ तथा ‘लोक’ दो प्रकार की स्पष्ट विभाजक रेखा थी। शिष्ट के अन्तर्गत प्रतिभावान व समाज के अग्रगणनीय लोगों की गणना थी। यह वर्ग अभिजात वर्ग के नाम से भी जाना जाता था। लोक के अन्तर्गत वो सामान्य जनता थी जो बौद्धिक विकास की दृष्टि से अपेक्षाकृत कम उन्नत थी। इस दृष्टि से लोक संस्कृति का उत्स भी जनता थी जो शिष्ट संस्कृति की सहायक थी। डा. कृष्ण देव उपाध्याय के अनुसार ‘ऋग्वेद’ शिष्ट संस्कृति का परिचायक है तो ‘अथर्ववेद’ लोक संस्कृति का। ‘अथर्ववेद’, ‘ऋग्वेद’ का पूरक है। अथर्ववेद के विचारों का धरातल जन-जीवन है तो ऋग्वेद का विशिष्ट जन-जीवन है।

प्रो. बलदेव उपाध्याय ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ ‘गृह्य सूत्रों में लोक संस्कृति’ में पारस्कर और आश्वलायन गृह्य सूत्रों में जनता में प्रचलित लोक विश्वासों का वर्णन माना है। इसीप्रकार जातक कथाओं में भी लोक जीवन का विस्तार से वर्णन है। रामायण आदि ग्रंथों में सुग्रीव, बाली और जाम्बवान इत्यादि उसी लोक के प्रतिनिधि हैं जो आज भारत देश में एक विशाल जन-समूह के रूप में विद्यमान हैं। रामायण के अनेक श्लोकों से पता लगता है कि उस काल में भी लोक और शिष्ट दो प्रकार की भाषाएँ प्रचलित थीं। सामान्य जन लोक भाषा और शिष्ट जन परिष्कृत भाषा का प्रयोग करते थे। महाभारत में भी ‘लोक’ शब्द की उपस्थिति है। कवि कुलगुरु कालिदास के महान ग्रंथों में भी शिष्ट संस्कृति और लोक संस्कृति का रूप देखने को मिलता है।

1.3.2 पाश्चात्य साहित्य में लोक शब्द की उपस्थिति

सर्वसाधारण की उपस्थिति तलाशने के लिए सर्वप्रथम यूरोपीय विद्वानों ने पहल की। वे सामान्य जन के रीति-रिवाज, अन्धविश्वास व प्रथा परम्परा का विशेष रूप से अध्ययन करना चाहते थे। सर्वप्रथम सन् 1987 में जॉन आब्रे ने ‘रिमेन्स ऑफ जेंटिलिज्म एण्ड जूडाइज्म’ नामक

पुस्तक लिखी। इसके बाद जेब्रन्ड ने 'ऑब्जर्वेशन ऑन पॉपुलर एण्टीक्विटीज' नामक पुस्तक लिखी, जिसमें 19वीं शताब्दी के पूर्व के लोक जीवन का अनुशीलन किया गया था। इस पुस्तक का प्रकाशन 1877 में हुआ। यही कालान्तर में 'फोक लोर' या लोक वार्ता के रूप में भी सामने आया है, जिसमें लोक संस्कृति का अध्ययन विश्लेषण किया जाता है, इस दिशा में कार्य करने वालों में डा. फ्रेजर, इ.बी.टायलर, विलियम ग्रिम, जेकब ग्रिम इत्यादि प्रमुख हैं। डा. बारकर ने फोक शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'फोक' से सभ्यता से दूर रहने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है। परंतु इसका यदि विस्तृत अर्थ लिया जाये तो किसी सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इस नाम से पुकारे जा सकते हैं। लेकिन 'फोक लोर' के सम्बन्ध में 'फोक' का अर्थ 'असंस्कृत लोक' है। दूसरा शब्द 'लोर' एंग्लो सैक्शन 'लर' (संत) शब्द से निकला है जिसका अर्थ है 'सीखा गया' अर्थात् ज्ञान। इस प्रकार 'फोक लोर' का अर्थ हुआ 'असंस्कृत लोगों का ज्ञान'।

बोध प्रश्न:-

टिप्पणी-

1. अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
2. इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 1. 'लोक' का शाब्दिक अर्थ बताइए ?

.....

प्रश्न 2. फोक शब्द का कोशगत अर्थ क्या है?

.....

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं कुछ गलत उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

क. लोक शब्द संस्कृत के लोक धातु से घञ् प्रत्यय मिलाकर बना है। ()

ख. महर्षि व्यास ने भी महाभारत में जन सामान्य के रूप में 'लोक' शब्द का प्रयोग किया है। ()

1.3.3 'फोक' शब्द के विविध अर्थ

डॉ.राम नरेश त्रिपाठी ने 'फोक' शब्द का अर्थ ग्राम किया है। वास्तव में ग्राम शब्द उस अर्थ की पुष्टि नहीं कर पाता जिसकी ध्वनि 'फोक' में निहित है क्योंकि लोक की सत्ता केवल गाँव तक ही सीमित नहीं है। 'फोक' के अर्थ में 'जन' शब्द का भी प्रयोग हुआ है लेकिन इसके लिए सर्वाधिक सटीक शब्द 'लोक' है। इस शब्द की एक अपनी परम्परा है। इस 'लोक' शब्द का उल्लेख प्राचीनतम भारतीय साहित्य में भी उपलब्ध है।

1.4 'लोक' शब्द की परिभाषा

विविध विद्वानों ने लोक शब्द को अनेक रूप से परिभाषित किया है-

1. डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार, "लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है। लोक कृत ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूता माता, पृथ्वी, मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणात्मक रूप है।"

इस प्रकार वासुदेव शरण अग्रवाल ने लोक के अर्थ को एक बड़ा विस्तार दे दिया है।

2. डा. सत्येन्द्र ने अनुसार-"लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।" डा. सत्येन्द्र की परिभाषा के अनुसार लोक सीधे-सादे, सरल ग्राम्य वर्ग की अभिधा बना है। यह वह वर्ग है जो शिक्षित भी नहीं है।

3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचार कुछ इस प्रकार हैं- "लोक" शब्द का अर्थ 'जन-पद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुयें आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।" आचार्य द्विवेदी जी ने लोक की व्याप्ति ग्राम और नगर दोनों में मानी है। निश्चित रूप से ये लोग शिक्षित नहीं हैं, आचार-व्यवहार में भी परिष्कृत नहीं हैं; लेकिन सरल और निष्कपट हैं।

4. डा. कृष्णदेव उपाध्याय ने 'लोक' को परिभाषित करते हुए लिखा है- "आधुनिक सभ्यता से दूर, अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली, तथाकथित अशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को 'लोक' कहते हैं जिनका जीवन दर्शन और रहन-सहन प्राचीन परम्पराओं, विश्वासों तथा आस्थाओं द्वारा परिचालित एवं नियंत्रित होता है।" डा. उपाध्याय के अनुसार लोक को

प्राकृतिक परिवेश में सरल जीवन जीने वाले लोगों के रूप में पहचाना है, लेकिन ये लोग अपनी बनाई परम्परा का ही निर्वाह करते हैं। इनके अपने विश्वास, अपनी आस्थाएँ और जीवन जीने का अपना अंदाज होता है।

5. डा. देव सिंह पोखरिया के अनुसार -“लोक मानव समाज के वह सामूहिक इकाई है, जो अपने नैसर्गिक और स्वाभाविक रूप में अभिजात्य बंधनों तथा परम्पराओं से रहित; पाण्डित्य, चमत्कार तथा शास्त्रीयता से दूर स्वतंत्र एवं पृथक जीवन का प्रचेता है और इसी का साहित्य लोक साहित्य है।” डा. पोखरिया ने लोक के अन्तर्गत उन लोगों को रखा है जो स्वच्छन्द जीवन जीने के आदी हैं।

1. 5सारांश

इस प्रकार आप समझ गए होंगे कि वास्तव में लोक एक स्वाभाविक और सरल मानव समाज है जो परम्पराओं और चिरकाल से चली आ रही मान्यताओं का पालन करता है। यह अहंकार से शून्य और प्रकृति के नजदीक है और तथाकथित सभ्य समाज से दूर आदिम अभिव्यक्ति को प्रस्तुति देता है। अंग्रेजी में ‘लोक’ के लिए ‘फोक’ शब्द प्रचलित है जो एंग्लोसेक्शन ‘फोल’ का पर्याय है और जिसका शाब्दिक अर्थ आदिम है।

बोध प्रश्न:-

टिप्पणी-

1. अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
2. इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 3. ‘लोक’ शब्द से आप क्या समझते हैं ? संक्षिप्त उत्तर दीजिए?

.....

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं कुछ गलत उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

ग. लोक जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। ()

घ. लोक अभिजात्य संस्कार से दूर परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ()

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. 'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक' (दर्शन) धातु से 'घञ्'प्रत्यय लगकर बना है। लट् लकार, अन्य पुरुष, एक वचन में इसका रूप 'लोकते' बनता है। अतः 'लोक' शब्द का अर्थ है- 'देखने वाला'।

उत्तर 2. डा. बारकर ने लोक शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'लोक' से सभ्यता से दूर रहने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है। 'लोक' का अर्थ 'असंस्कृत लोक' है।

उत्तर 3. लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार और पाण्डित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है। यह सरल स्वाभाविक जीवन जीता हुआ परम्पराओं के प्रवाह में जीवित रहता है।

2. सही गलत उत्तर

क. (✓)

ख. (✓)

ग. (✓)

घ. (✓)

1.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिद्धान्त कौमुदी, वैकेटश्वर प्रेस, बम्बई, 1989
2. ऋग्वेद 3/53/12
3. नाभ्या आसीदंतरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तता।
पद्भ्यां भूमिर्दिदशः श्रोतात्तथा लोकां अकल्पयन्॥ वही ऋग्वेद 10/90/24
4. बहु व्याहितो वा अयं बहुशो लोकः क एतद् अस्य पुनरीहितो अपात्, जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण 3/28
5. अज्ञान तिमिरान्धस्य लोकास्य तु विचेष्टतः।
ज्ञानांजन शलाकामिर्नेत्रोन्मीलन कारकम्॥ महाभारत आदिपर्व 1/84

-
6. लोक साहित्य की भूमिका, डा. कृष्णदेव उपाध्याय
 7. अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः। गीता 15/18
 8. लोक साहित्य की भूमिका, डा. कृष्ण देव उपाध्याय, पृ0 16
-

1.8 उपयोग पाठ्य सामग्री

1. लोक साहित्य की भूमिका, डा. कृष्ण देव उपाध्याय, साहित्य भवन प्रा.लि. इलाहाबाद।
 2. लोक संस्कृति की रूपरेखा, डा. कृष्ण देव उपाध्याय, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद
-

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

- प्रश्न 1. लोक के स्वरूप एवं प्रवृत्ति को स्पष्ट कीजिए।

इकाई 2 लोक साहित्य स्वरूप एवं प्रवृत्ति

इकाई की रूपरेखा

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 लोक साहित्य की परिभाषा
 - 2.3.1 लोक साहित्य का सामान्य परिचय
 - 2.3.2 लोक साहित्य और लोक वार्ता
 - 2.3.4 लोक साहित्य और अभिजात साहित्य
- 2.4 लोक साहित्य की उपादेयता
 - 2.4.1 लोक साहित्य का वर्गीकरण
- 2.5 लोक गाथाओं के प्रकार
- 2.6 लोकोक्तियों का वर्गीकरण
- 2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 2.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

लोक साहित्य की मौखिक परंपरा रही है। मानव जीवन के साथ ही उसके सुख दुःख की अनुभूतियाँ शब्द द्वारा अभिव्यक्त होती रही हैं। मानव जीवन के साथ ही इस लोक साहित्य की सृष्टि होती रही है। मनुष्य अपने आदिम रूप में प्रकृति देवता का उपासक था और सहज-सरल प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था। उसका आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज सरल और स्वाभाविक थे। उसका जीवन आडम्बर और कृत्रिमता से रहित था। अपने जीवन के प्रतिपल के अनुभव वह सहज आह्लाद के क्षणों में गीतों और कथा कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त करने लगा। यह अभिव्यक्ति नितान्त मौखिक थी और इसका उद्देश्य भी केवल मनोरंजन प्राप्त करना ही था। ऐसा स्वच्छन्द, सरल, अकृत्रिम, अवशिष्ट साहित्य जो लिप्यंतरित कर लिया गया है, लोक साहित्य की कोटि में आता है। यहाँ हमारा मन्तव्य ऐसे साहित्य का अध्ययन-विश्लेषण करना रहेगा।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

1. लोक साहित्य की स्वरूप और प्रवृत्तियों को हृदयंगम कर सकेंगे।
2. लोक साहित्य की विविध विविधाओं से परिचय प्राप्त करेंगे।

2.3 लोक साहित्य की परिभाषा

‘लोक साहित्य’ शब्द दो शब्दों के योग से निर्मित है-‘लोक’ तथा ‘साहित्य’अंग्रेजी के ‘फोक लिटरेचर’ के पर्याय के रूप में हिन्दी में ‘लोक साहित्य’ शब्द का प्रयोग होता है। लिटरेचर शब्द ‘लैटर्स’ से निकला है जिसका अर्थ साहित्य के केवल लिखित और पठित रूप को अभिव्यक्ति देता है। डा. पोखरिया के अनुसार “साहित्य की आत्मा केवल ‘लिपि’ में ही संकुचित नहीं हो सकती अतः मौखिक साहित्य को भी इसके अन्तर्गत समाहित करके साहित्य को और भी व्यापक बनाया जा सकता है।”¹ डा. सत्येन्द्र भी कुछ यही विचार रखते हैं-“साहित्य के इस विस्तृत अर्थ में आज मनुष्य की वह समस्त सार्थक अभिव्यक्ति सम्मिलित मानी जायेगी, जो लिखित या मौखिक हो, किंतु जो व्यवसाय क्षेत्र की न हो।”²

डा. स्वर्णलता के अनुसार- “लोक साहित्य का क्षेत्र बड़ा विशद् है। अत्यंत आदिम, जंगली अभिव्यक्तियों से लेकर शिष्ट साहित्य की सीमा तक पहुँचने वाली समस्त अभिव्यक्ति लोक साहित्य के अन्तर्गत आती है।”³

डा. सत्येन्द्र मिश्रा के अनुसार- “लोक साहित्य का मूल्य केवल साहित्य की दृष्टि से उतना नहीं होता जितना उन परम्पराओं की दृष्टि से होता है जो नृविज्ञान के किसी पहलू पर प्रकाश डालती है। इस साहित्य को आदि मानव की आदिम प्रवृत्तियों का कोश कह सकते हैं।”⁴

डा. सत्येन्द्र ने लोक साहित्य की विस्तार से चर्चा करते हुए कहा है-“लोक साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है, जिसमें (अ) आदिम-मानस के अवशेष उपलब्ध हों। (आ) परम्परागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत उपलब्धि हो, जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो और जो लोक-मानस की प्रवृत्ति में समाई हुई हो। (इ) कृतित्व हो, किन्तु वह लोक मानस के सामान्य तत्वों से युक्त हो, कि उसके किसी व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध रहते हुए भी लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करे।”⁵

डा. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार- “लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्तित्व ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक-समूह अपना मानता है और जिसमें लोक की युग-युगीन वाणी-साधना समाहित रहती है। जिसमें लोक-मानस प्रतिबिम्बित रहता है।”⁶

डा. त्रिलोचन पाण्डेय के मतानुसार-“जन साहित्य उन समस्त परम्परित, मौखिक तथा लिखित रचनाओं की समष्टि कहा जा सकता है, जो किसी एक व्यक्ति या अनेक व्यक्तियों द्वारा निर्मित होते हुए भी आज सामान्य जन समूह का अपना ही कृतित्व माना जाता है, जिसमें किसी जाति, समाज या एक क्षेत्र में रहने वाले सामान्य लोगों की परम्पराएँ, विशेष प्रवृत्तियाँ, आचार-विचार, रीति-नीतियाँ, वाणी-विलास आदि समाहित रहते हैं।”⁷

डा. विद्या चौहान का मत है-“लोक में व्याप्त प्राणियों के जीवन का मुखरित व्यापार लोक साहित्य है, जिसमें क्षण-क्षण की अनुभूतियाँ, मनोवेग, हृदयोद्गार तथा क्रिया व्यापार सजीव साकार होते हैं। विश्व के विशाल प्रांगण में जो सहज और सामान्य सत्य रूप है, लोक साहित्य उसकी भी विवृत्ति करता है, देश-काल कि सीमाओं के पार अनवरत गतिशील युग की सामान्य चेतना की प्रत्येक गति का, सुषुप्ति और जागृति का, धर्म और नीति का स्वाभाविक चित्रण इसमें रहता है।”⁸

डा. देव सिंह पोखरिया के अनुसार-“लोक की भाषा अथवा बोली में, मौखिक और परम्परागत रूप से प्रचलित लोक मानस की कंठानुकंठ निर्वैयक्तिक, भावावेग पूर्ण, सम्पूर्ण जीवनानुभूतियों की सजीव अभिव्यक्ति ही लोक साहित्य है।”

डा. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार-“सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली, अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दुःख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है उसे लोक साहित्य कहते हैं। इस

प्रकार लोक साहित्य जनता का वह साहित्य है जो जनता के द्वारा, जनता के लिए लिखा गया हो।”⁹

2.3.1 लोक साहित्य का सामान्य परिचय

विश्व के सभी देशों में लोक साहित्य का रूप लगभग एक-सा है। संसार के सभी देश के निवासी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में प्रकृति देवी की उपासना करते थे और प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते थे। उनका जीवन आचार-व्यवहार, रहन-सहन अत्यंत सरल, निश्छल और स्वाभाविक था। वे कृत्रिमता और आडम्बर से कोसों दूर थे। वे प्रकृति की निश्छल गोद में स्वाभाविक जीवन जी रहे थे। उनके हास-परिहास व दैनिक क्रिया कलापों में अत्यंत स्वाभाविकता थी। मन के उल्लास की अभिव्यक्ति के रूप में वे भी साहित्य रचना करते थे लेकिन उनके द्वारा रचे गए साहित्य और आज के साहित्य में पर्याप्त अन्तर है। उनका साहित्य सहज, सरल किसी शास्त्रीय रूढ़ियों में आबद्ध नहीं था, न ही कथा विधान में किसी विशेष शिल्प की आवश्यकता थी। उनके साहित्य में केवल स्वाभाविकता, सरलता और स्वच्छन्दता निहित थी। उनका साहित्य उतना ही स्वाभाविक था जितना कि जंगल में किसी फूल का अचानक खिल जाना, नदी का कल-कल ध्वनि में बहते रहना या आकाश में किसी चिड़िया का स्वच्छन्दता से उड़ना। आज उसी साहित्य के जो अवशिष्ट सुरक्षित हैं वे लोक साहित्य के नाम से जाने जाते हैं।¹⁰

लोक साहित्य की विशेषताएँ-

डा. देव सिंह पोखरिया ने लोक साहित्य की विशेषताओं को इस प्रकार रेखांकित किया है-

1. लोक साहित्य श्रुति-परम्परा पर आधारित होता है और यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी तथा कंठानुकंठ परम्परित रहता है।
2. किसी व्यक्ति अथवा समूह द्वारा सृजित होकर भी इसमें निर्वैयक्तिकता होती है।
3. इसमें द्विरुक्ति और आवृत्तिमूलकता होती है।
4. नाम परिगणनात्मकता रहती है।
5. इसमें नैसर्गिक सहजता एवं अकृत्रिमता होती है।
6. गेयता एवं रसात्मकता का प्राधान्य होता है।
7. शिल्पगत शास्त्रीय आग्रह नहीं होता है।
8. सम-सामयिकता की सटीक अभिव्यक्ति एवं गतिशीलता होती है।¹¹

लोक साहित्य को जन-साहित्य भी कह दिया गया है। राहुल सांकृत्यायन, धीरेन्द्र वर्मा, दशरथ ओझा, डा. त्रिलोचन पाण्डे, सदृश विद्वान जन-साहित्य को लोक-साहित्य के पर्याय के रूप में देखते हैं। लेकिन डा. नामवर सिंह का मत थोड़ा अलग है। उनका कहना है, “जन-साहित्य औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न समाज व्यवस्था की भूमिका में प्रवेश करने वाले सामान्य जन का साहित्य है। इसलिए जन-साहित्य, लोक-साहित्य से इसी अर्थ में भिन्न है कि लोक-साहित्य जहाँ जनता के लिए जनता ही द्वारा रचित साहित्य है, वहाँ जन-साहित्य जनता के लिए व्यक्ति द्वारा रचित साहित्य है।”¹² वास्तविकता भी यही है कि जन-साहित्य में व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य बना रहता है लेकिन लोक-साहित्य में रचनाकार का व्यक्तित्व तिरोहित हो जाता है और वह लोक मानस से तदाकार हो जाता है। कुछ लोग लोक-साहित्य को ग्राम साहित्य भी मानते हैं। रामनरेश त्रिपाठी व देवेन्द्र सत्यार्थी सदृश विद्वानों का मत यही है। लेकिन ‘ग्राम’ और ‘लोक’ एक ही अर्थ को प्रतिध्वनित नहीं करते। ‘ग्राम’ शब्द ‘लोक’ को एक संकुचित क्षेत्र में सीमित कर देता है। ग्राम साहित्य से तो केवल ग्रामीण क्षेत्र में प्रचलित साहित्य का ही आभास मिलता है जबकि लोक साहित्य में ‘ग्राम’ और ‘नगर’ दोनों के ही साहित्य का समाहार हो जाता है। डा. शंकुन्तला वर्मा इसी मत की पुष्टि करती हुई कहती हैं-“ग्राम गीत मात्र ग्राम की सम्पत्ति कही जायेगी, जबकि लोक गीत का सृजन ग्राम, नगर, जंगल कहीं भी हो सकता है पर यह समूचे लोक की सम्पत्ति होगी। ग्राम गीत लोक गीत हो सकता है, किंतु लोक गीत अनिवार्यतः और मात्र ग्राम गीत ही हो यह आवश्यक नहीं।”¹³ इस प्रकार स्पष्ट है कि लोक-जीवन को प्रतिध्वनित करने वाले साहित्य को लोक-साहित्य का ही नाम सर्वथा उपयुक्त है।

बोध प्रश्न:-

प्रश्न 1. ‘लोक साहित्य’ का क्या तात्पर्य है? स्पष्ट उल्लेख कीजिए?

.....

.....

.....

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं कुछ गलत उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

क. लोक साहित्य को आदिम साहित्य कह सकते हैं। ()

ख. लोक मानस की सरल और भावावेगपूर्ण जीवनानुभूति ही लोक साहित्य है। ()

2.3.2 लोक साहित्य और लोक वार्ता

‘लोक साहित्य’ और ‘लोक वार्ता’ दो भिन्न अर्थों के वाहक हैं। ‘लोक वार्ता’ अंग्रेजी भाषा के ‘फोक लोर’ का हिन्दी अनुवाद है। ‘लोर’ शब्द की उत्पत्ति एंग्लोसेक्सन शब्द ‘लारे’ से हुई है जिसका अर्थ है जो सीखा जाए। इस प्रकार ‘फोक लोर’ शब्द का अर्थ आदिम या

सुसंस्कृत लोगों के ज्ञान से है। पाश्चात्य विद्वान डब्ल्यू. जे. थॉमस ने सर्वप्रथम 'फोक लोर' शब्द का प्रयोग किया। हिन्दी में वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसके लिए 'लोकवार्ता', हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'लोक संस्कृति', डा. सत्येन्द्र ने 'लोक तत्व' आदि नामों का प्रयोग किया। आज 'फोक लोर' के लिए 'लोक संस्कृति' और 'लोक वार्ता' शब्द ही अधिक प्रचलित हैं। अंग्रेजी के विद्वान ऐरेलिया एस्पिनीजा के अनुसार- 'फोकलोर की सामग्री अधिकांश रूप में सामाजिक मानव विज्ञान शास्त्र की सामग्री के समान है। विशिष्ट रूप से फोकलोर के अन्तर्गत लोक विश्वास, प्रथायें, अन्ध-विश्वास, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ, गीत, पुराण-कथा, अवदान, लोक-कथा, धार्मिक संस्कार, जादू, डायन-विद्या तथा आदिवासियों एवं अशिक्षित लोगों के क्रिया-कलाप आते हैं। फोकलोर किसी सभ्यता की पद्धति अथवा प्रकार को स्थाईत्व प्रदान करता है तथा इसके अध्ययन से हम किसी सभ्यता के अभिप्राय तथा उसके वास्तविक अर्थ को समझते हैं।' ¹⁴

जार्ज फास्टर- इस विद्वान के अनुसार, 'फोकलोर के अध्ययन का क्षेत्र पहेलियों, गीतों, लोकोक्तियों, लोक विश्वासों तथा विभिन्न प्रकार के अन्ध-विश्वासों तक विस्तृत है। इसके अतिरिक्त बच्चों के खेल, पालने के गीत, संस्कार, विविध विधि-विधान तथा जादू एवं डायन शास्त्र भी आता है।' ¹⁵

आर्चर टेलर- अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के अमेरिकन विद्वान् आर्चर टेलर का मत है कि- 'फोकलोर की परिभाषा के भीतर निम्नांकित सभी विधाओं का अन्तर्भाव हो जाता है जो निम्नांकित हैं- विभिन्न प्रकार की लोक कथायें, लोक गाथायें, लोक गीत, बालकों के गीत, जादू, लोकोक्तियाँ और पहेलियाँ आदि।' ¹⁶

जे. कुरथ- इस विद्वान का अभिप्राय यह है कि- 'फोकलोर वह विज्ञान है जिसमें पारम्परिक लोक विश्वास, लोक कथा, अन्ध-विश्वास, सूक्ति, संस्कार, प्रथा, खेल, गीत तथा नृत्य का वर्णन किया गया हो।' ¹⁷

'लोक साहित्य' और 'लोक वार्ता' में पर्याप्त अन्तर है। 'लोक साहित्य' 'लोक वार्ता' का एक अंग है। 'लोक वार्ता' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में होता है। इसमें 'लोक परम्पराओं', 'लोक प्रथाओं', 'लोक विश्वासों', 'लोक साहित्य', 'नृत्य', 'समाज शास्त्र', 'भाषा शास्त्र', 'इतिहास' तथा 'पुरातत्व' आदि का अध्ययन होता है। 'लोक वार्ता' तो सम्पूर्ण 'लोक संस्कृति' का विस्तार से अध्ययन करने वाला विज्ञान है। 'लोक साहित्य' का क्षेत्र 'लोक वार्ता' की अपेक्षा संकुचित है। 'लोक वार्ता' लोक का समूचा ज्ञान है जबकि 'लोक साहित्य' केवल साहित्य का। 'लोक वार्ता' एक विज्ञान है जबकि 'लोक साहित्य' एक कला। डा. कृष्ण देव उपाध्याय के शब्दों में- 'लोक साहित्य' 'लोक संस्कृति' ('फोक लोर') का एक भाग है, उसका एक अंश है। यदि 'लोक संस्कृति' की उपमा किसी विशाल वट वृक्ष से दी जाय तो, 'लोक साहित्य' को उसकी एक शाखा मात्र समझना चाहिए। 'लोक संस्कृति' का क्षेत्र विस्तार

अत्यंत व्यापक है, परंतु 'लोक साहित्य' का विस्तार संकुचित है। 'लोक संस्कृति' की व्यापकता जन-जीवन के समस्त व्यापारों में उपलब्ध होती है, परंतु 'लोक साहित्य' जनता के गीतों, कथाओं, गाथाओं, मुहावरों और कहावतों तक ही सीमित है। 'लोक साहित्य' अंग है तो 'लोक संस्कृति' अंगी है। 'लोक संस्कृति' में 'लोक साहित्य' का अन्तर भाव हो जाता है, परंतु लोक साहित्य में लोक संस्कृति का समावेश होना संभव नहीं।'¹⁸

इसप्रकार आप समझ ही गए होंगे कि 'लोक-वार्ता' में ऐतिहासिक, मनोविज्ञानिक और सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर मानव समाज का विश्लेषण करके प्राप्त निष्कर्षों द्वारा सामान्य नियम निर्धारण किया जाता है। लोक साहित्य लोक की कल्पना कला, सौंदर्य और भावों की साहित्यिक अभिव्यक्ति है।

बोध प्रश्न:-

प्रश्न 2. 'लोक साहित्य' और 'लोक वार्ता' अन्तर बताइये?

.....

.....

.....

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं कुछ गलत उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

ग. लोक वार्ता, लोक संस्कृति का व्यापक अध्ययन करने वाला गतिशील विज्ञान है। ()

घ. लोक साहित्य, लोक वार्ता का एक अंग है। ()

2.3.4 लोक साहित्य और अभिजात साहित्य

डा. देव सिंह पोखरिया के अनुसार "जिस साहित्य में अभिजात गुण विद्यमान हों, उसे अभिजात, कुलीन, शास्त्रीय अथवा परिनिष्ठित साहित्य कहा जाता है। वस्तुतः कोई भी अनुभूति लोक भाव-भूमि से उठकर ही, परिष्कृत होकर परिनिष्ठित रूप में प्रतिष्ठित होती है। लोक की यही अनुभूति परिष्कार के द्वारा आभिजात्य गुणों से मण्डित होकर अभिजात-साहित्य के रूप में परिणित होती है।"¹⁹ लोक साहित्य परम्परानुमोदित पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से हस्तांतरित होता है। लोक साहित्य में वे सभी अनुभूतियाँ समाहित हैं जो सरल और निर्बाध रूप से अकृत्रिम रूप में अभिव्यक्ति पाती हैं। डा. रामनरेश त्रिपाठी ने लोक साहित्य की तुलना प्रकृति के उस उद्यान से की है जो स्वतंत्र रूप से विकसित होते हैं। जबकि अभिजात साहित्य माली द्वारा निर्मित उस क्यारी के समान है जिसके पौधे कैची से कतर कर एक विशिष्ट अभिरुचि के साथ सजे-संवरे रूप में विकसित होते हैं। लोक साहित्य प्रकृति के अंचल में स्वाभाविक अभिव्यक्ति पाता है। लोक साहित्य मौखिक है, जबकि अभिजात लिखित। लोक साहित्य में सहजता, सरलता,

स्वाभाविकता, नैसर्गिकता और अनुभूति अनिवार्य तत्व के रूप में समाहित रहते हैं, जबकि अभिजात साहित्य में प्रौढ़ता, उक्ति वैचित्र्य, बौद्धिकता, कल्पनाशीलता और क्लिष्टता पायी जाती है। लोक साहित्य में शास्त्रीय सिद्धांतों का निर्वहण नहीं होता जबकि अभिजात साहित्य में यह अनिवार्य लक्षण है। लोक भाषा सरल, व्यावहारिक व आड़म्बर शून्य होती है। इसमें गेयता और संगीतात्मकता स्वतः विद्यमान रहती है, जबकि अभिजात साहित्य में भाषा परिनिष्ठित और परिष्कृत होती है। इसका एक सुनिश्चित व्याकरण होता है। लोक साहित्य में कृत्रिमता का कहीं कोई स्थान नहीं, जबकि अभिजात साहित्य बुद्धिचातुर्य की मांग करता है। अभिजात साहित्य में गेय तत्व होना अनिवार्य नहीं है। लोक साहित्य की गेयता निर्बाध और स्वच्छन्द रूप से प्रवाहित होती है, जबकि अभिजात साहित्य रचने वाला कवि कविता को छन्द के बन्धनों में बाँधता है। लोक साहित्य में अलंकार चमत्कार की होड़ नहीं होती, जबकि अभिजात साहित्य शिल्प-सौन्दर्य के प्रति जागरूक रहता है। अभिजात साहित्य लोक साहित्य से ही निकलता है। व्यावहारिक दर्शन के वास्तविक रूप को अभिजात कवि लोक कथाओं से ही प्राप्त करता है। डा. सत्येन्द्र के अनुसार “रस, छंद, अलंकार और भाषा आदि सभी रूपों में अभिजात-साहित्य लोक साहित्य से प्रभावित रहता है अभिजात या परिनिष्ठित-साहित्य की प्रवृत्ति मुख्यतः परिमार्जन की और रहती है। यह सौंदर्य और अनुभूति का वैशिष्ट्य ही नहीं चाहती, अभिव्यक्ति के रूप का भी वैशिष्ट्य चाहती है। अतः इसमें कला ही नहीं कौशल भी आता है। रूप का वैशिष्ट्य और कौशल का उपयोग ऐसे साहित्य को सीमा-रेखाओं में बाँध देता है। यह बंधन आगे चलकर नियम और शास्त्र की परम्परा में पर्यवसित हो जाता है।”²⁰

यह तो निर्विवाद सत्य है कि लोक-साहित्य और अभिजात साहित्य परस्पर गुँथे हुए हैं। लोक साहित्य से प्रेरणा लेकर कवि अनुभूति को परिष्कृत कर शास्त्रीय नियम उपनियमों में बाँटकर एक शिष्ट अभिजात साहित्य को जन्म देता है। डा. रघुवंश के विचारानुसार-“लोक की अभिव्यक्ति लोक जीवन की प्रक्रिया का अंग है, पर साहित्यिक अभिव्यक्ति सर्जनात्मक होती है। वह जीवन से उद्भूत, प्रेरित या सम्बद्ध होकर भी तटस्थता अथवा असम्पृक्ति में उसका अंग नहीं हो सकती। साहित्य जीवन का सर्जन है, पुनः जीने की प्रक्रिया है। लोकाभिव्यक्ति के क्षणों में भी समाज के बीच व्यक्ति अपनी सजगता में प्रमुखतः जीवन का अनुभव करता है, जबकि साहित्यिक यर्थाथ जीवन के सर्जन में भी सामाजिक जीवन का अनुभव न करके सर्जन की असम्पृक्त सुख का अनुभव करता है।”²¹

बोध प्रश्न:-

प्रश्न 3. ‘लोक साहित्य’ और ‘अभिजात साहित्य’ में अन्तर बताइये?

.....

.....

.....

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं, कुछ गलत। उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

इ. लोक साहित्य परम्परानुमोदित पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से हस्तांतरित होता है। ()

च. अभिजात साहित्य परिनिष्ठत और शास्त्रीय साहित्य है। ()

2.4 लोक साहित्य की उपादेयता

लोक साहित्य का अपना विशिष्ट महत्व है। यह मानव की प्रकृति का सहज ज्ञान है। यह मानव जीवन की अमूल्य थाती है। सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से इनका महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। लोक साहित्य के माध्यम से ही किसी समाज की यथा स्थिति व उसकी संस्कृति की सम्पूर्ण झलक मिलती है। जन-समुदाय विशेष की प्रथाएँ, परम्पराएँ, रूढ़ियाँ, विश्वास, मान्यताएँ, रीति-रिवाजों का प्रतिबिम्ब उसके लोक साहित्य में पड़ता है। किसी भी समाज के पारिवारिक और समुदायिक जीवन की जानकारी उस अंचल विशेष के लोक साहित्य के अध्ययन से मिल जाती है। लोक जीवन की आर्थिक, धार्मिक स्थिति भी लोक साहित्य में स्वयमेव अंकित हो जाती है। स्थानीय देवी-देवता, उनका पूजा-विधान लोक धर्म के रूप में जाना जाता है और उसकी प्रामाणिक जानकारी हमें लोक साहित्य से ही प्राप्त होती है। साहित्यिक दृष्टि से भी इनका महत्व कम नहीं है। लोक गीतों में नवल छन्द रूप और नवल अभिव्यक्ति भंगिमा का परिचय मिलता है। लोक साहित्य का अध्ययन अंचल विशेष के इतिहास और भूगोल को जानने में भी सहायक सिद्ध होता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भी लोक साहित्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। लोक भाषा एक जीवंत भाषा है। इसमें गत्यात्मकता और परिवर्तनशीलता है। लोक साहित्य में मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों का अगाध भण्डार है। इनके प्रयोग से परिनिष्ठित साहित्य समृद्ध होता है। प्रायः लोक भाषा में मिलती-जुलती अभिव्यक्ति के लिए अनेक शब्दों का भण्डार मिल जाता है, जिसका अत्यंत सूक्ष्म अन्तर अर्थ गाम्भीर्य में विलक्षण वृद्धि करता है। इसप्रकार हम कह सकते हैं कि किसी भी अंचल का लोक साहित्य सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक, भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से उस अंचल विशेष का विशेष ज्ञान प्रदान करता है। डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने लोक साहित्य के महत्व को इन शब्दों में प्रकट किया है- “लोक साहित्य उस निर्मल दर्पण के समान है जिसमें जनता जनार्दन का अस्तित्व तथा विराट स्वरूप पूर्णरूपेण दिखाई पड़ता है। लोक सांस्कृतिक का जैसा दिव्य तथा अकृतिम प्रतिबिम्ब इस साहित्य में उपलब्ध होता है, उसका दर्शन अन्यत्र कहाँ।”²²

बोध प्रश्न:-

प्रश्न 4. ‘लोक साहित्य’ की क्या उपयोगिता है ?

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं, कुछ गलत। उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

छ. लोक भाषा एक जीवंत भाषा है। ()

ज. लोक साहित्य में मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों का अगाध भण्डार है। ()

पाश्चात्य देशों में लोक साहित्य का अध्ययन -

सर्वसाधारण जनता के रीति-रिवाज और रहन-सहन के अध्ययन हेतु सर्वप्रथम यूरोपीय विद्वानों का ध्यान गया और उन्होंने ने सामान्य जनता के द्वारा रचित साहित्य का अध्ययन किया। प्रसिद्ध विद्वान जॉन आब्रे ने तीन सौ वर्ष पूर्व सन् 1987 में 'रीमेंस ऑफ जेटिलिज्म एण्ड जूडाइज्म' नामक पुस्तक में इसकी चर्चा की। इसके लगभग दौ सौ वर्ष पश्चात् जे.ब्रैण्ड नामक विद्वान ने 'ऑब्जर्वेशन ऑन पोपुलर एण्टीक्वीटिज' नामक पुस्तक में सन् 1877 में लोक जीवन की चर्चा की। 1846 में इंग्लैण्ड के विद्वान विलियम जॉन टॉमस ने 'फोकलोर' नामक शब्द का प्रयोग किया। डा. फ्रेजर, इ.वी.टाइलर, नामक विद्वानों ने भी अपनी-अपनी कृतियों में लोक जीवन को उद्धाटित किया। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान विलियम ग्रिम तथा जेकब ग्रिम ने जर्मनी की लोक कथाओं को एकत्रित करके उनका वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जो 'ग्रिम्स फेयरी टेल्स' के नाम से प्रसिद्ध है। श्लेगल, स्टेंथल, चाइल्ड, प्रो.कीट्रीज, प्रो.गूमर, बिशप परशी इत्यादि भी लोक साहित्य का अध्ययन करने वाले प्रमुख पाश्चात्य विद्वान हैं।

इंग्लैण्ड तथा यूरोप के लगभग सभी देशों में 'फोकलोर सोसायटी' के स्थापना के तहत लोक संस्कृति के साथ-साथ लोक साहित्य का अध्ययन विश्लेषण किया गया है। ठीक इसी प्रकार 'अमेरिकन फोकलोर सोसायटी' के अन्तर्गत वहाँ के लोक साहित्य का अध्ययन संरक्षित है।

भारत में लोक साहित्य की परम्परा -

भारत में लोक साहित्य की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। लोक गीतों के बीच हमें पुरातन और पवित्र ग्रंथ ऋग्वेद में मिलते हैं। पद्य या गीत के अर्थ में गाथा शब्द का प्रयोग हुआ है। ब्राह्मण तथा एनी आर्ष ग्रंथों में गाथाओं का विशेष उल्लेख है। प्राचीन काल में किसी राजा के अच्छे काम को लक्षित कर जो लोक गीत समाज में प्रचलित थे वे ही गाथा के नाम से साहित्य में स्वीकृत किये गए। पालिजातक कथाओं में भी अनेक लोक कथाएँ मौजूद हैं। विक्रम संवत् की तृतीय शताब्दी में राजा हाल या शालिवाहन के द्वारा संग्रहीत गाथा 'सप्तसती' में संग्रहीत दोहों में लोक गीत का रूप दिखाई पड़ता है।

2.4.1 लोक साहित्य का वर्गीकरण

लोक साहित्य जन-साधारण के जीवन का दर्पण है। जन-सामान्य जो सोचता और अनुभव करता है वही उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम बनता है। गीत, कहानियाँ, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, ग्रामीण जन के हृदयगत विचारों का प्रकाशन ही हैं। विविध विद्वानों ने लोक साहित्य को विविध कोटियों में वर्गीकृत किया है। डा.कृष्ण देव उपाध्याय ने लोक साहित्य को निम्नांकित पाँच वर्गों में वर्गीकृत किया है -

1. लोक-गीत 2. लोक-गाथा 3. लोक-कथा 4. लोक-नाट्य और 5. लोक-सुभाषिता।

डा. त्रिलोचन पाण्डे ने लोक साहित्य को सात प्रमुख वर्गों में बाँटा है -

1. लोक गीत (फोक साँग्स) 2. कथा गीत (बैलेड्स) 3. लोक गाथाएँ (फोक इपिक्स) 4. लोक कथाएँ (फोक टेल्स) 5. लोकोक्तियाँ और कहावतें (प्रॉवर्ब्स) 6. पहेलियाँ (रिडिल्स) 7. फुटकर रचनाएँ।

1. लोक-गीत- लोक साहित्य के अन्तर्गत लोक-गीत सर्वप्रमुख हैं। लोक गीतों में जनसामान्य के भाव और अनुभूतियों की व्यापकता सहज रूप से प्राप्त होती है। लोक साहित्य का लगभग अधिकांश भाग लोक गीतों में समाहित है। डा. देव सिंह पोखरिया के अनुसार- “लोक मानस की सुख दुखात्मक अनुभूति ही अनगढ़, गेय और मौखिक रूप में लोक गीत के रूप में फूट पड़ती है। साहित्यिक दृष्टि से काव्यात्मक गुणों की अभिजात्यता के अभाव में भी इनका अपना अलग ही नैसर्गिक सौन्दर्य होता है।”²³

डा. राम नरेश त्रिपाठी के अनुसार- “ग्राम गीत प्रकृतिक के उद्गार हैं। इसमें अलंकार नहीं केवल रस है, छन्द नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है। सभी मनुष्यों के- स्त्री-पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम्य गीत हैं।”²⁴ इसके स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं- “लोकगीत में जन-जीवन के हर्ष और विषाद, आशा और निराशा, सुख और दुःख, सभी की अभिव्यक्ति होती है। इसमें कल्पना के साथ रसवृत्ति भावना और नृत्य की हिलोर भी अपना काम करती हैं, परंतु ये सब खाद हैं। लोक गीत हृदय के खेत में उगते हैं। इसमें हृदय का इतिहास इस प्रकार व्याप्त रहता है जैसे-प्रेम में अकार्षण, श्रद्धा में विश्वास और करुणा में कोमलता। प्रकृति के गान में मनुष्य इस प्रकार प्रतिबिम्बित होता है- जैसे कविता में कवि, क्षमा में मनोबल और तपस्या में त्याग। प्रकृति संगीतमय है। लोकगीत प्रकृति के उसी महासंगीत के अंश है।”²⁵ स्पष्ट है कि लोक गीत जन-सामान्य के कंठ से स्वतःस्फूर्त एक भावमयी अभिव्यक्ति है, इसीलिए इसका प्रभाव क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। डा. श्याम परमार इसकी विस्तृत व्याप्ति की चर्चा करते हुए कहते हैं- “इसकी ध्वनि में बालक सोये हैं, जवानी में प्रेम की मस्ती आयी है, बूढ़ों ने मन बहलाये हैं, वैरागियों ने उपदेश का पान कराया है, विरही युवकों ने अपने मन की कसक मिटाई है, विधवाओं ने अपनी एकाकी

जीवन में रस पाया है, पथिकों ने अपनी थकावटें दूर की है, किसानों ने अपने बड़े-बड़े खेत जोते हैं, मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाये हैं।²⁶

हीरामणि सिंह साथी के अनुसार-“लोक गीत जनमानस की कोख से उपजे धरती के गीत हैं, जिसमें बांसुरी का आकर्षण भी है एवं बीन की मिठास भी; पुरवइया की मादकता भी है और नारी कण्ठों का इन्द्रजाल भी है इनकी बोल में एक युग बोलता है, एक व्यवस्था बोलती है और एक अनुशासित समाज बोलता है। इनमें पीड़ा भी है, उल्लास भी है, अपमान भी है और प्रेम समर्पण का अगाध विस्तार भी है, जहां एक व्यक्ति की बोली समष्टि की बोली बन जाती है।”²⁷

लोक गीतों के वैशिष्ट्य को उजागर करते हुए वे कहते हैं “लोक छन्दों का यह रचना संसार सचमुच बड़ा अब्दुत है। यह रचना भी है और उसका संरक्षण भी करता है। यह बात करता है मौसम की, पशु-पक्षी, खेत-ताल, वन-पहाड़, गांव-गली, राग-रंग की। हमारे व्यक्तित्व के आयाम को सचमुच यहां विस्तार मिलता है। वह निखरता है, संवरता है, लालित्य और आकर्षण के ओर-छोर से वह जुड़ता है।”²⁸

डा. चितामणि उपाध्याय लोक गीतों में लोक जीवन की सच्ची झांकी पाते हैं। वे मानते हैं कि मनुष्य के सामाजिक, पारिवारिक एवं व्यक्तिगत जीवन से जुड़े हुए अनेक मार्मिक चित्र लोकगीतों में उतर आते हैं।²⁹

हिन्दी साहित्य कोश में लोक गीत शब्द ने तीन अर्थ दिए हैं-1. लोक में प्रचलित गीत, 2. लोक निर्मित गीत 3. लोक विषयक गीत। इस तरह जो गीत लोक द्वारा निर्मित हों, लोक विषयक हों तथा लोक में प्रचलित हों लोक गीत कहे जाते हैं।³⁰

लोक गीतों के भी अनेक उपवर्ग किये जा सकते हैं। लोक गीतों का विभाजन अनेक प्रकार से किया जा सकता है। डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने भारतीय लोक साहित्य को छः श्रेणियों में विभक्त किया है जैसे- क. संस्कार सम्बन्धी गीत, ख. ऋतु सम्बन्धी गीत, ग. व्रत सम्बन्धी गीत, घ. देवता सम्बन्धी गीत, ण. जाति सम्बन्धी गीत, च. श्रम सम्बन्धी गीत।

1. संस्कारों की दृष्टि से- भारत धर्म प्राण देश है। यहाँ धर्म को जीवन चर्या से जोड़कर अपनाने की परम्परा चली आयी है। हमारे जीवन में षोड्स संस्कारों का विधान है। जन्म से पूर्व और मृत्यु के बाद तक इन संस्कारों की श्रृंखला चलती रहती है। इनमें गर्भाधान, पुंसवन, जन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह, गवना और मृत्यु प्रधान है। गर्भाधान और पुंसवन संस्कारों की परम्परा भी अब धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है। केवल छः संस्कार मुख्य रूप से आज भी निभाये जाते हैं। इन सभी संस्कारों में देश के सभी प्रांतों में लोक गीतों की परम्परा है। जन्मोत्सव और विवाह आदि में जहाँ प्रसन्नता के स्वर गूँजते हैं वहीं मृत्यु के अवसर पर गाये जाने वाले गीत अत्यंत कारुणिक और हृदय विदारक होते हैं। इन गीतों में मृतात्मा के गुणों का वर्णन करते हुए विलाप की परम्परा है। इन शोक गीतों की संख्या अपेक्षाकृत कम है।

2. ऋतुओं और व्रतों के क्रमानुसार- भारत कृषि प्रधान देश है। यहाँ के ग्रामीण धरती से जुड़े हैं। प्रकृति से नजदीक सम्बन्ध रखते हुए इनके गीतों में बदलती ऋतुओं और उनसे जुड़े त्यौहारों का आह्लाद समाया हुआ है। वर्षा, वसंत, हेमंत, शिशिर ऋतुओं में बदलते मौसम का अनुभव और उनसे जुड़े व्रत त्यौहारों के आनन्द की अभिव्यक्ति लोक गीतों में आसानी से मिलती है। जहाँ आषाढ़ का महीना कृषकों को आल्हा गाकर उल्लसित करता है तो वहीं सावन में कजली उनके हृदय की अनुभूतियों का सशक्त साधन है। फागुन में फाग का उल्लास है तो चैत में चैती गाकर वे अपने मनोभावों को शब्द प्रदान करते हैं। यही नहीं इन ऋतुओं से जुड़े हुए व्रतों के लिए भी अनेक लोक गीत रचे गए हैं। 'नाग पंचमी' में जहाँ नाग देवता सम्बन्धी गीत उपलब्ध हैं तो वहीं कृष्ण पक्ष की चतुर्थी में 'बहुरा' और कार्तिक शुक्ल द्वितीया में 'गोधन' की पूजा के विधान के साथ-साथ इष्ट परक इनसे जुड़े अनेक लोक गीत प्राप्त होते हैं। भारत में शायद ही ऐसा कोई त्यौहार या व्रत हो जिससे जुड़ा कोई लोक गीत उपलब्ध न हो।

3. रसानुभव के आधार पर- रस नौ प्रकार के माने जाते हैं। लोक गीतों में इन सभी रसों की अभिव्यक्ति मिलती है। श्रृंगार, करुण, वीर, हास्य और शांत रस की अनुभूति इन लोक गीतों में सहजता से मिल जाती है। श्रृंगार रस से सम्बन्धी गीत प्रायः सोहर, जनेऊ, विवाह इत्यादि अवसरों पर गाये जाते हैं। इन गीतों में स्त्री की देह यष्टि का सौन्दर्य, वर की सुन्दरता, संयोग और वियोग के अनेक सुन्दर गीत उपलब्ध हैं। झूमर गीतों में श्रृंगार की प्रचुरता है। करुण रस के गीतों में निर्गुन, सोहनी, रोपनी, सदेई इत्यादि की गणना की जा सकती है। कन्या की विदाई से सम्बन्धी गीतों में भी करुण रस की रसधारा प्रस्रवित होती है। इन लोक गीतों में कुछ गीत प्रबंधात्मक भी हैं, जो गेय होते हुए भी किसी विशेष घटना को लेकर पद्यबद्ध रचे गए हैं। इसलिए इन्हें लोक गाथा का नाम भी दे दिया गया है। इन गीतों में श्रृंगार, करुण और वीर रस की अनूठी अभिव्यक्ति मिलती है। ढोला मारुरा, आल्हा, लोरकी, सोरठी, बंजारा, गोपीचन्द भरथरी, राजा रसालु, राजुला मालूसाही, सदेई, कालू भंडारी, सिदुवा-बिदुवा इत्यादि गीत इसी कोटी के हैं। लोक गीतों में हास्य रस अपेक्षाकृत कम होते हुए भी अपना स्थान रखता है। देवर-भाभी, जीजा-साली से सम्बन्धी गीतों में हास्य का पुट अनायास मिल जाता है। यही नहीं कई होली गीतों में श्रृंगार के साथ-साथ हास्य रस की मधुर अभिव्यंजना दिखाई पड़ती है। लोक गीतों में पाये जाने वाले भजनों में जिसमें गंगा, तुलसी, तीर्थों का वर्णन होता है, उनमें शांत रस पाया जाता है। संध्या तथा रात्रि के समय गाये जाने वाले भजनों, 'संझा' और 'पराती' में भी शांत रस का उद्रेक होता है और भक्ति भाव जागता है।

4. देव सम्बन्धी- भारतवर्ष विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों का आश्रय स्थल है। यहाँ 33कोटि देवताओं की कल्पना की गई है। इन विभिन्न देवी-देवताओं की आराधना और पूजा के लिए अनेक स्तुति परक गीतों का विधान है। राम, कृष्ण, हनुमान, शिव, गौरा, दुर्गा, चण्डी, गंगा, यमुना से जुड़े गीतों के साथ-साथ अनेक स्थानीय देवी-देवता जैसे छटी माता, शीतला माता और उत्तराखण्ड के जागर गीतों में गोरील, गोल देवता, नागर्जा, सैम देवता, भैरव देवता इत्यादि

से सम्बन्धित लोक गीतों का प्रचलन है। भारत के लगभग सभी प्रांतों में अपने-अपने स्थानीय देवताओं को प्रसन्न करने के लिए लोक गीतों के गायन की परम्परा है। इन गीतों की इतनी अधिकता है कि इसे एक पृथक श्रेणी या वर्ग में परिगणित किया जा सकता है। लगभग सभी आदिवासी गीतों में देवताओं से सम्बन्धित गीतों को गाया जाता है।

5. जाति सम्बन्धी- कुछ लोक गीत ऐसे भी हैं जो केवल कुछ विशेष जातियों में ही गाये जाते हैं। अहीर जाति के लोगों का जातीय गीत 'विरहा' है। इसीप्रकार दुःसाध जाति के लोग पचरा गाते हैं। इसीप्रकार चमारों के गीत, गोड़ों के गीत, कहारों के गीत, धोबियों के गीत, माली के गीत पाये जाते हैं। गेरुआ वस्त्र धारण करके 'साई' नामक कुछ साधु सारंगी पर गोपी चन्द और भरथरी की गाथा गाते हैं। इसीप्रकार गढ़वाल में 'औजी' जाति विशेष प्रकार के मांगलिक गीत गाती हैं।

6. श्रम सम्बन्धी गीत- कुछ लोक गीत ऐसे हैं जो विशेष कार्य करते हुए ही गाये जाते हैं। जैसे खेतों में धान रोपते समय जो गीत गाते हैं उन्हें 'रोपनी' के गीत, खेत निराते समय 'निरवाही' या 'सोहनी' के गीत, जाँत पीसते समय 'जैतसार', तेल पेरते समय 'कोल्हू के गीत' आज भी गाँवों में गाये जाते हैं। इन गीतों को श्रम गीतों की श्रेणी में रखा गया है। गीत गाते समय एक तो थकान का अनुभव नहीं होता, दूसरा काम में मन लगा रहता है।

पं० रामनरेश त्रिपाठी जी ने लोक गीतों को ग्यारह वर्गों में वर्गीकृत किया है-

1. संस्कार सम्बन्धी गीत 2 चक्की और चरखे के गीत 3 धर्म गीत 4 ऋतु सम्बन्धी गीत 5 खेती गीत, 6 भिखमंगी गीत 7 मेले के गीत 8 जाति गीत 9 वीर गाथा गीत 10 गीत कथा 11 अनुभव के वचन।³¹

डा. कृष्ण देव उपाध्याय के अनुसार यह वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं है। चक्की और चरखों के गीतों का अन्तर्भाव, श्रम सम्बन्धी गीतों में हो जाता है, धर्म और व्रत गीत एक दूसरे ही के पूरक हैं, खेती, भिखमंगों और मेले गीत विविध गीतों के अन्तर्गत आ सकते हैं, वीर गाथा और गीत गाथा लोक गाथाओं के अन्तर्गत आ जाती हैं। अनुभव गीतों के सूक्ति के अन्तर्गत लिया जा सकता है।

पारीक का वर्गीकरण-

प्रसिद्ध राजस्थानी लोक गीतों के विद्वान पं.सूर्यकरण पारीख ने राजस्थानी लोक गीतों को इस प्रकार वर्गीकृत किया है-

1. देवी-देवताओं और पितरों के गीत 2 ऋतुओं के गीत 3 तीर्थों के गीत 4 व्रत-उपवास और त्योहारों के गीत 5 संस्कारों के गीत 6 विवाह के गीत 7 भाई-बहन के प्रेम के गीत 8 साली-सालेल्याँ के गीत 9 पति-पत्नि के गीत 10 पणिहारियों के गीत 11 प्रेम के गीत 12 चक्की पीसते समय के गीत 13 बालिकाओं के गीत 14 चरखे के गीत 15 प्रभाती के गीत 16 हरजस-राधा

कृष्ण के प्रेम के गीत 17 धमाले-होली के अवसर पर पुरुषों द्वारा गाए गीत 18 देश-प्रेम के गीत 19 राजकीय गीत 20 राज-दरबार, मजलिस, शिकार, दारू के गीत 21 जन्मे के गीत 22 सिद्ध पुरुषों के गीत 23 वीरों के गीत, ऐतिहासिक गीत, 24 ग्वालियों के गीत 25 पशु-पक्षी सम्बन्धी गीत 26 शान्त रस के गीत 27 गाँवों के गीत 28 नाट्य गीत 29 विविध गीत आदि³²

डा. श्याम परमार ने भारतीय लोक साहित्य में श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव के मत का उल्लेख करते हुए उनके द्वारा प्रतिपादित लोक गीतों के भेदों का उल्लेख किया है। श्री भालेराव ने गीतों को चार श्रेणियों में विभक्त किया है- 1 संस्कार गीत 2 माहवारी गीत 3 सामाजिक-ऐतिहासिक गीत 4 विविध गीत।³³

लोक जीवन में बारह महीने गीतों के स्वर गुंजित होते हैं। लोक गीतों में किसी प्रकार के अलंकार या उक्ति वैचित्र्य के लिए स्थान नहीं है। ये धरती से उगते हैं और किसी एक व्यक्ति द्वारा रचे होने पर भी निर्वैयक्तिक होते हैं। ये अंचल विशेष के संस्कृति का स्वच्छ प्रतिबिम्बन करते हैं। इन गीतों में प्रायः पुनरावृत्ति पाई जाती है। तुकान्त होने के साथ-साथ इनका शिल्प विधान स्वच्छन्द रहता है।

2. लोक-गाथा- लोक-गाथा के लिए अंग्रेजी में 'बैलेड' शब्द का प्रयोग किया गया है। संस्कृत साहित्य में 'गाथा' शब्द का प्रयोग गेय पदावली के अर्थ में होता आया है। 'बैलेड' अथवा 'लोक गाथा' की परिभाषा विविध विद्वान अनेक रूप से देते हैं। न्यू इंगलिश डिक्शनरी के अनुसार 'बैलेड वह स्फूर्तिदायक या उत्तेजना पूर्ण कविता है जिसमें कोई जनप्रिय आख्यान रोचक ढंग से वर्णित हो।' लोक की भाषा अथवा बोली में पारम्परिक, स्थानीय अथवा पुरा आख्यानमूलक गेय अभिव्यक्ति लोक गाथा है। लोक गाथा का रचनाकार अज्ञात होता है, इसमें प्रमाणिक मूल पाठ की कमी होती है। ये प्रायः संगीत और नृत्य शैली में अभिव्यक्ति पाते हैं और मौखिक रूप से कंठानुकंठ परम्परित होती है। बद्रीनारायण के अनुसार-"लोक गाथाओं का सम्पूर्ण ढाँचा एक जीवन वृत्तान्तपरकता पर आधारित होता है। लोक गाथाओं की वृत्तान्त परकता ही इसे अन्य लोक गीतों से पृथक करती है। लोक गाथाओं का वृत्तान्त मात्र भूत न होकर वर्तमान से संवाद होता है तथा भविष्य की झांकी उपस्थित कर रहा होता है इस प्रकार लोक गाथाओं का वृत्तान्त 'इतिहास में इतिहास का' निरन्तर समय विकसित करता है।"³⁴

लोक गाथाओं की उत्पत्ति का सिद्धान्त-

लोक गाथाओं की उत्पत्ति सम्बन्धी छः सिद्धान्त विशेष रूप से माने गए हैं-

1. ग्रिम का सिद्धान्त- समुदायवाद
2. श्लेगल का सिद्धान्त- व्यक्तिवाद
3. स्टेन्थल का सिद्धान्त- जातिवाद

4. विशप पर्सी का सिद्धान्त- चारणवाद
5. चाइल्ड का सिद्धान्त- व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद
6. उपाध्याय का सिद्धान्त- समन्वयवाद

1. ग्रिम का सिद्धान्त- जर्मन के सुप्रसिद्ध विद्वान जैकब ग्रिम का लोक गाथाओं के सम्बन्ध में अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इन्होंने गाथाओं की उत्पत्ति समुदाय के मध्य मानी है। ग्रिम का मानना है कि लोक गाथाओं का निर्माण स्वतः होता है। इसके निर्माण के पीछे किसी विशिष्ट कवि या रचयिता का हाथ नहीं होता बल्कि समस्त जनता या समुदाय इसका निर्माण करता है। ग्रिम का मानना है कि जिस प्रकार इतिहास का निर्माण नहीं किया जा सकता ठीक उसी प्रकार किसी काव्य का निर्माण नहीं हो सकता। सामान्य जनता ही प्राचीन घटनाओं को लेकर उस काव्य को बना डालती है। इसप्रकार लोक काव्य की उत्पत्ति स्वयं होती है। लोक काव्य किसी विशेष व्यक्ति या कवि द्वारा नहीं रचा जा सकता बल्कि इसका प्रादुर्भाव स्वतः होता है और जनता इसका प्रचार भी अपने आप करती है। ग्रिम के मत का सिद्धान्त वाक्य है- जनता ही लोक काव्य की रचना करती है। लोक गाथाओं को परिभाषित करते हुए उन्होंने स्वयं लिखा कि 'लोक गाथा जनता के द्वारा जनता के लिए जनता की कविता है।' इस प्रकार से लोक गीत या लोक गाथाएँ किसी कवि विशेष की सम्पत्ति नहीं होती हैं।

2. श्लेगल का सिद्धान्त- व्यक्तिवाद- ए.डब्लू.श्लेगल ने लोक गाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में एक अलग मत प्रतिपादित किया। इनका मत व्यक्तिवाद के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने माना कि किसी कविता का रचयिता कोई न कोई व्यक्ति अवश्य होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे किसी प्रासाद, अट्टालिका आदि का निर्माण कोई न कोई कलाकार या वास्तुकार करता है। लोक कविता के निर्माण में भी यही बात लागू होती है। यह बात अलग है कि लोक गाथा के निर्माण में अनेक लोक कवियों का सहयोग रहता है लेकिन वह मूलतः किसी कवि विशेष की ही कविता हो सकती है। अतिप्राचीन कविता में व्यक्ति विशेष द्वारा किसी विशेष योजना के तहत कविता का निर्माण होता है। इसप्रकार स्पष्ट है कि जहाँ ग्रिम समुदायवाद को लोक गाथाओं की उत्पत्ति मानते हैं वहीं श्लेगल व्यक्तिवाद को प्रधानता देते हैं।

3. स्टेन्थल का सिद्धान्त- जातिवाद- स्टेन्थल का मत ग्रिम के सिद्धान्त से मेल खाता है। जहाँ ग्रिम मानते हैं कि कुछ व्यक्तियों के समुदाय से लोक गाथाओं की रचना होती है वहीं स्टेन्थल मानते हैं कि सम्पूर्ण जाति के समस्त व्यक्ति मिलकर इनकी रचना करते हैं। इनका मत है कि व्यक्ति सभ्यता तथा युग के विकास की परिणति इनमें दिखाई पड़ती है। आदिम जातियों में भावना, एषणा और मूल प्रवृत्तियाँ समान होती हैं। एक जाति का एक व्यक्ति जैसा अनुभव करता है समूची जाति उसका वही अनुभव करती है। इस तरह से लोक गाथा किसी एक व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति न होकर समूचे जाति की सम्पत्ति होती है। विश्व के छोटे-छोटे देशों में अनेक आदिम

जातियाँ विद्यमान हैं। ये सब एकसाथ मिलकर त्यौहार, उत्सव सार्वजनिक रूप से मनाते हैं और मनोरंजन करते हैं। विशेष अवसरों के लिए ये विशेष गीतों का निर्माण करते हैं। इस तरह से लोक गाथाओं का सृजन होता है।

4. बिशप पर्सी का सिद्धान्त- चारणवाद- इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध विद्वान बिशप पर्सी ने माना कि लोक गाथाओं का निर्माण चारण या भाटों द्वारा हुआ है। ये चारण लोग मध्य काल में इंग्लैण्ड में ढोल या सारंगी पर गाना गाते हुए भिक्षा याचना करते थे। इसके लिए वे गीतों की रचना भी करते थे। ऐसे गीतों को मिन्स्ट्रल बैलेड कहा जाता है। ये चारण लोग धनी सम्पन्न व्यक्तियों के यहाँ जीविकोपार्जन के लिए जाते थे और उनके सम्मान में गीत गाया करते थे। बिशप पर्सी की मान्यता है जहाँ वीरगाथाओं का निर्माण इन चारणों ने किया वहीं छोटे-छोटे वर्णनात्मक गीत भी इन्हीं के द्वारा रचे गए। बिशप पर्सी के मत का समर्थन जोसेफ रितसन, सर वाल्टर स्कॉट सदृश विद्वानों ने भी किया है। डा. कृष्ण देव उपाध्याय का मानना है कि पर्सी का सिद्धान्त अधिकांशतः सही होते हुए भी सभी गाथाओं की उत्पत्ति के लिये उचित नहीं है।

5. चाइल्ड का सिद्धान्त- व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद- अमेरिका के लोक साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान प्रो.चाइल्ड का मानना है कि जिस प्रकार किसी काव्य का लेखक होता है उसी प्रकार इन गाथाओं की रचना भी किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा की जाती है परंतु उसके व्यक्तित्व का कोई विशेष महत्व नहीं होता। उस व्यक्ति की रचना भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा गाये जाने के कारण उसमें समय-समय पर परिवर्तन और परिवर्धन होता रहता है। अंततः उस गाथा के मूल लेखक का व्यक्तित्व नष्ट और तिरोहित होकर जन-सामान्य की सम्पत्ति बन जाता है। प्रो.चाइल्ड का मत श्लेगल के सिद्धान्त से मेल खाता है। डेन्मार्क के प्रसिद्ध लोक साहित्य के विद्वान प्रो. स्ट्रीनस्ट्रूप भी चाइल्ड के सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। प्रो.चाइल्ड ने लोक गाथाओं पर विशेष कार्य किया है और उनका ग्रंथ 'इंग्लिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स' अत्यंत प्रसिद्ध है। प्रो. चाइल्ड के मत में सत्य का अंश है।

6. उपाध्याय का सिद्धान्त- समन्वयवाद- डा. कृष्ण देव उपाध्याय का सिद्धान्त समन्वयवाद के नाम से जाना जाता है। उन्होंने सभी मतों में पाये जाने वाले सत्य को समन्वित कर समन्वयवाद की धारणा बनाई। उन्होंने माना कि लोक गाथा सृजन में उक्त सभी कारण विद्यमान हैं और इन सभी मतों का सामूहिक तथा समवेत योगदान इनकी उत्पत्ति का हेतु है। उन्होंने उदाहरण देकर बताया कि कुछ गीत और गाथाएँ ऐसी हैं जो किसी व्यक्ति विशेष की रचनाएँ हैं। भोजपुरी, चैता या घाँटों के गीतों में बुलाकीदास का नाम बार-बार आता है। जिससे ज्ञात होता है कि इनकी रचना उसी के द्वारा की गई है। इसीप्रकार बुन्देलखण्ड में ईसुरी के फागों का प्रचार, ब्रज में मदारी और स्नेही राय के गीत गाये जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि लोक साहित्य के निर्माण में चाहे कवि हो या नाटककार हो या कथाकार हो किसी न किसी व्यक्ति का सहयोग अवश्य होता है।

गाथाओं की रचना में समुदाय का भी बहुत बड़ा योगदान है। अनेक गीत ऐसे हैं जिनका प्रचार-प्रसार किसी जाति विशेष में ही मिलता है। उदाहरण के लिए विरहा अहिर जाति के लोग और पचरा दुःसाथ जाति के लोग गाते हैं। स्पष्ट है कि विरह की रचना अहीरों का समुदाय कर रहा है न कि कोई व्यक्ति विशेष। झुमर महिलाओं का समूह बनाता है न कि कोई एक स्त्री विशेष। यह भी ठीक है कि आदिम जातियों में पूरी-पूरी जाति के लोग समुदायिक रूप से मनोरंजन करते थे। यदि कोई एक व्यक्ति गीत की कोई एक पंक्ति बनाता तो दूसरा उसको पूरी करता, तीसरा और चौथा उसमें कड़ियाँ जोड़ते जाता। इस प्रकार एक गीत की रचना होती थी। यह गीत किसी एक गायक का न होकर समूची जाति का सम्मिलित प्रयत्न था।

चारणों द्वारा लोक गीतों की रचनाएँ हुई हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में जगनीक और चंदवरदायी की कृतियाँ प्रसिद्ध हैं। राजस्थान में तो चारणों द्वारा आश्रयदाताओं की प्रशस्ति गाना प्रचलित था। गुजरात में भी चारणी साहित्य अपना विशेष महत्व रखता है। यही बात इंग्लैण्ड में भी प्रचलित थी। इसप्रकार व्यक्तिवाद, जातिवाद, समुदायवाद और चारणवाद ये सभी के सभी लोक गाथाओं के उत्पत्ति के कारण माने जा सकते हैं। केवल किसी एक को कारण मानना उपयुक्त नहीं होगा।

2.5 लोक गाथाओं के प्रकार

लोक गाथाओं के अनेक भेद हैं- 1 आकार की दृष्टि से 2 विषय की दृष्टि से। आकार की दृष्टि से दो प्रकार की गाथाएँ प्रचलित हैं। लघु और वृहद्। लघु गाथाएँ आकार में छोटी होती हैं, वृहद् गाथाएँ बड़ी। हीर-रांझा, ढोला-मारू, आल्हा-ऊदल आदि लोक गाथाएँ विस्तृत हैं। डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने लोक गाथाओं का विभाजन तीन भागों में किया है-1 प्रेम कथात्मक गाथाएँ 2 वीर कथात्मक गाथाएँ 3. रोमांच कथात्मक गाथाएँ। प्रेम कथात्मक गाथाओं का मूल प्रेम है। इन गाथाओं में प्रेम सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख मिलता है। यह प्रेम साधारण परिस्थिति में उत्पन्न न होकर विषम वातावरण में भी उत्पन्न हो सकता है। भोजपुरी की 'कुसुमा देवी' व 'भगवती देवी' तथा गढ़वाल की चैती तथा प्रणय गाथाएँ जैसे रामीबौराण, गजू मलारी, जीतू भरणा, राजूला मालूशाही, सदेई, जसी, सरू, फ्यूली रौतेली इत्यादि गाथाएँ प्रेम कथात्मक गाथाएँ हैं। पंजाब में सोहनी महिवाल की गुजराती गाथा शुद्ध प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है। अंग्रेजी साहित्य में भी प्रेम गाथाओं की प्रचुरता पायी जाती है।

वीर कथात्मक गाथाओं में किसी वीर के साहसपूर्ण और शौर्य का वर्णन मिलता है। इन कथानकों में वीर पुरुष किसी आपदग्रस्त अबला का उद्धार करता हुआ या युद्ध में शत्रुओं का सामना करता हुआ जूझता हुआ दिखाई पड़ता है। उसकी अलौकिक वीरता का वर्णन करना इस गाथाओं का परम उद्देश्य है। आल्हा ऊदल की गाथाओं में मातृभूमि की रक्षा के लिए महाप्रतापी राजा पृथ्वीराज सिंह भीषण युद्ध की कथा है। विजय मल्ल की गाथा भी वीर कथात्मक गाथाओं

के अन्तर्गत आती है, जिसका गायन भोजपुरी प्रदेश में मिलता है। रोमांच कथात्मक गाथाओं में रोमांच और रोमांस दोनों मिलता है। 'सोरठी' की गाथा इसी श्रेणी की है।

प्रो. कीट्रीज ने लोक गाथाओं को चारण गाथाओं और परम्परागत गाथाओं में वर्गीकृत किया है। चारण गाथाओं के अन्तर्गत वे गाथा आती हैं जब मध्यकालीन यूरोप में चारण लोग राजदरबारों में आकर गाथाओं का गायन करते थे। चारणों द्वारा गाये जाने के कारण इन गाथाओं को चारण गाथा कह दिया गया। बिशप पर्शी ने अपनी पुस्तक रैलिक्स ऑफ एन्शेण्ट इन्डियन पोएट्री की भूमिका में इन चारण लोक गाथाओं की उत्पत्ति की विवेचना की है।

परम्परागत गाथाओं में उन गाथाओं को ले लिया गया है जो समाज में चिरकाल से चली आ रही हैं और उनका प्रभाव और प्रचार आज भी जस का तस है। यूरोपीयन समाज में सत्रहवीं शताब्दी में इन गाथाओं का प्रकाशन हुआ था।

प्रो. फ्रांसिस गूमर ने लोक गाथाओं को छः श्रेणियों में बाँटा है- 1. प्राचीनतम गाथाएँ 2. कौटुम्बिक गाथाएँ 3. अलौकिक गाथाएँ 4. पौराणिक गाथाएँ 5. सीमांत गाथाएँ 6. आरण्यक गाथाएँ। इन गाथाओं को विस्तार से इस प्रकार समझा जा सकता है-

1. प्राचीनतम गाथाएँ- प्राचीनतम गाथाओं में सर्वप्रथम समस्या मूलक गाथाओं को परिगणित किया जा सकता है। इनकी उत्पत्ति ग्रीस देश से मानी जाती है। ये गाथाएँ आकाश, पृथ्वी और ऋतुओं से सम्बद्ध हैं। ये कुछ-कुछ हमारी उन वैदिक ऋचाओं के समतुल्य भी हैं जिनमें इन तत्वों का उपासनायुक्त वर्णन किया गया है। गूमर ने अपनी पुस्तक 'दि पॉपुलर बैलेड' इन समस्या मूलक गीतों को उद्धृत किया है- दूसरी प्रकार की गाथाओं में घरेलू जीवन से सम्बन्धित प्रेम गाथाओं को स्थान मिला है। 'गिल ब्रेटन' की गाथा इसका एक अच्छा उदाहरण है। स्कॉट लैण्ड में इस प्रकार के कई गीत मिलते हैं जिनमें कोई पक्षी प्रेमी का पत्र उसकी प्रियतमा तक पहुँचाता है।

2. कौटुम्बिक गाथाएँ- इनमें परिवार के विभिन्न व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार का वर्णन मिला है। माता-पिता, सास-बहू, ननद-भाभी, माँ-बेटी, के परस्पर संबंधों की सुन्दर झलकियाँ इन गाथाओं में प्राप्त होती हैं। 'क्रूयल ब्रदर' नामक गाथा में एक ऐसे भाई की निर्दयता का वर्णन है जो अपनी बहन के पेट में इसलिए छुरा भोंकता है क्योंकि उसने उससे पूछे बिना विवाह कर लिया। इसीप्रकार सास और बहू के विषम संबन्धों का भी अनेक गाथाओं में वर्णन है। अंग्रेजी में ऐसी बहुत सी गाथाएँ उपलब्ध होती हैं जिनमें पर-पुरुष द्वारा व्यभिचार के संकेत मिलते हैं।

3. अलौकिक गाथाएँ- इस प्रकार की गाथाओं में मृत्यु गीत और जादू के द्वारा शरीर के बदल जाने जैसे अन्धविश्वास मिलते हैं। 'बोनी जेम्स केम्पबेल' नामक गाथा में मृत पुरुष की पत्नी का करुण विलाप दिखायी देता है। अंग्रेजी के कुछ गीतों में परियों की प्रेम कथा भी दिखाई पड़ती है। टॉमस राइमर नामक गाथा में कोई व्यक्ति परियों के प्रेम जाल में फँस जाता है और अपने उद्देश्य

की पूर्ति हेतु व परीस्तान की यात्रा भी करता है। गढ़वाल में कई लोक गाथाओं में व्यक्ति को आँचरियों के प्रेमपाश में आबद्ध दिखाया गया है, जिसका परिणाम उसकी मृत्यु दिखाई गयी है। भारत में तो टोना टोटका, भूत-प्रेत से आविष्ट होता भी दिखाया गया है। उत्तराखण्ड की जागर गाथाएँ भी इसीप्रकार की अलौकिक गाथाओं के अन्तर्गत आती हैं।

4. पौराणिक गाथाएँ- इन गाथाओं का आधार पौराणिक कथा या जनता में प्रचलित किंवदन्तियाँ हैं। शेटलेण्ड में 'ओरफिन्स' की कहानी चिरकाल से चली आ रही एक ऐसी ही गाथा है। 'अवर गुड मैन', 'जौली बैगर' गाथाओं में हास्य का पुट भी दिखायी पड़ता है।

5. सीमांत गाथाएँ- इंग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड की सीमांत भागों में प्रचलित गाथाओं को सीमांत गाथाएँ कहा जाता है। इन गाथाओं में महान युद्धों की अपेक्षा छोटे-छोटे युद्धों की चर्चा विशेष रूप से की गई है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो 'बाबू कुँवर सिंह' का पवाड़ा सन् 1857 में भाग लेने वाले स्वतंत्रता संग्राम सेनानी की गाथा इसी कोटि में आती है। इसीप्रकार जगदेव पँवार व राणा वेणीमाधव की लोक गाथा भी इसी कोटि में रखी जा सकती हैं।

6. आरण्यक गाथाएँ- आरण्यक गाथाओं में इंग्लैण्ड के रॉबिन हुड की गाथा सर्वप्रिय है। रॉबिन हुड की अनेक गाथाएँ अंग्रेजी में प्रचलित हैं। ये ग्रीन वुड में निवास करते थे इसलिए इन गाथाओं का नाम ही ग्रीन वुड बैलेड पड़ गया। इन गाथाओं में 'द गेस्ट ऑफ रॉबिन हुड' सबसे बड़ी गाथा में से एक है। रॉबिन हुड एक लुटेरा था पर वह धनिकों को लूटकर गरीब और असहायों की सेवा करता था। इस कोटि की गाथाओं में भारतीय परिप्रेक्ष्य में सुल्ताना डाकू और डाकू मानसिंह की गाथा को रख सकते हैं। राजस्थान के जोराबर सिंह की गाथा भी ऐसी ही गाथा है।

निश्चित रूप से प्रो. फ्रांसिस गूमर द्वारा प्रतिपादित वर्गीकरण अत्यंत व्यापक है जिनमें सभी प्रकार की गाथाओं का समावेश हो जाता है।

3. लोक-कथा- 'कथा' या 'कहानी' शब्द संस्कृत के 'कथ्' से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है- 'कहना'। कथ् में स्त्रीलिंग 'आ' प्रत्यय के योग से 'कथा' बना है, जिसका मतलब है- किसी चरित्र, घटना, समस्या या उसके किसी रोचक पहलू का मनोरंजक वर्णन। लोक की भाषा अथवा बोली में परम्परा से चली आ रही मौखिक रूप से प्रचलित कहानी 'लोक कथा' है। अंग्रेजी में इसके लिए 'फोक टेल' शब्द का प्रयोग है। जनसामान्य के बीच लोक-कथाओं का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। बच्चे, बूढ़े व जवान इन्हीं कथाओं के माध्यम से अपना मनोरंजन करते हैं।

लोक साहित्य के अध्ययन में लोक कथाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। भारतीय लोक साहित्य में यदि विविध बोलियों की लोक कथाओं को संकलित करने की चेष्टा करे तो अनेक संकलन तैयार हो सकते हैं। लोक कथाओं की जन्म-भूमि भारतवर्ष है। इन कथाओं का प्रभाव पूरे संसार पर पड़ा है। ऋग्वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ है, इसमें सूक्तों के रूप में शनः शेष आख्यान, च्यवन और शुकन्या की कथा प्राचीनतम कथाओं के संकेत सूत्र हैं। ब्राह्मण ग्रंथों में

अनेक कथाएँ उपलब्ध हैं। पुरुरवा व उर्वशी और च्यवन भार्गव और सुकन्या मानवी की कथा कुछ ऐसी ही कथाएँ हैं। शतपथ ब्राह्मण में पौराणिक ऋषि दधीचि की कथा विश्वविख्यात है। उपनिषदों में नचिकेता का आख्यान विलक्षण है। केनोपनिषद में यक्ष और अग्नि की कथा मिलती है। संस्कृत की लोक कथाओं का सबसे प्राचीन संग्रह वृहद् कथा है। डा. व्यूलर के अनुसार इसकी रचना ईशा की दूसरी शताब्दी में हुई है। पंचतंत्र की कथाएँ अपने में अनूठी हैं। जिनका अनुवाद यूरोप की अनेक भाषाओं में हो चुका है। इन कथाओं में यूरोपीय कथा साहित्य को बहुत अधिक प्रभावित किया है। नीति सम्बन्धी कथाओं में पंचतंत्र के बाद 'हितोपदेश' की कथा आती है। इसी प्रकार वैताल पंचशतिका, सिंहासन द्वात्रिंशिका, शुक संपति इत्यादि संस्कृत कथाओं का अक्षय भंडार है। बौद्ध पंडितों द्वारा जातक कथाएँ भी प्राचीनतम लोक कथाओं का ही एक रूप है।

विविध विद्वानों ने लोक कथाओं का अनेक रूप से वर्गीकरण किया है। डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने वर्ण्य विषय की दृष्टि से इन कथाओं को छः वर्गों में बाँटा है- 1. उपदेश कथा 2. व्रत कथा 3. प्रेम-कथा 4. मनोरंजन कथा 5. सामाजिक कथा 6. पौराणिक कथा³⁵

डा. सत्येन्द्र का वर्गीकरण- डा. सत्येन्द्र ने अपने ग्रंथ 'बृज लोक साहित्य का अध्ययन' में लोक कथाओं को निम्न लिखित आठ वर्गों में विभाजित किया है- 1. गाथाएँ 2. पशु-पक्षी सम्बन्धी कथाएँ 3. परी की कथाएँ 4. विक्रम की कहानियाँ 5. बुझवल सम्बन्धी कहानियाँ 6. निरीक्षण गर्भीत कहानियाँ 7. साधु-पिरो की कहानियाँ 8. कारण निर्देशन कहानियाँ³⁶

डा. सेन का वर्गीकरण- डा. दिनेश चन्द्र सेन ने बंगाल की लोक कथाओं को चार भागों में विभक्त किया है- 1. रूप कथा 2. हास्य कथा 3. व्रत कथा 4. गीत कथा³⁷ डा. सेन ने भूत-प्रेत, देवता, दानव और अमानवीय, अप्राकृतिक अद्भुत कहानियों को रूप कथाओं के अन्तर्गत माना है। इस प्रकार की लोक कथाएँ संसार की लगभग सभी लोक भाषाओं में प्राप्त हैं। दूसरी प्रकार की कथाएँ ऐसी कथाएँ हैं जिन्हें पढ़कर या सुनकर हास्य रस उत्पन्न होता है। व्रत, विशेष पर्व त्यौहार सम्बन्धी कथाएँ भी लगभग सभी लोक भाषाओं में प्राप्त हैं। अन्तिम श्रेणी में उन कथाओं को लिया गया है जो बच्चों को पालना झुलाते समय या बूढ़ी दादी-नानी गोद में लेकर सुनाती हैं। इन कथाओं में मनोरंजन के साथ-साथ जीवन जीने के उपदेश भी निहित हैं। लोक कथाओं की सामान्य विशेषताएँ- विश्व की लोक कथाओं का अध्ययन करने के बाद पता लगता है कि इनमें कुछ सामान्य विशेषता है। डा. कृष्ण देव उपाध्याय के अनुसार इन लोक कथाओं में निम्नांकित विशेषताएँ प्राप्त होती हैं-

1. प्रेम का प्राधान्य- लगभग सभी लोक कथाओं में प्रेम का प्राधान्य मिलता है। प्रेम का यह रूप पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका, भाई-बहन, माता-पिता, पिता-पुत्र, माता-पुत्र अथवा पुत्री किसी के भी मध्य हो सकता है। अधिकांश कहानियों में माता की निश्छल वात्सल्य और ममत्व की भावना

दृष्टिगोचर होती है। पति-पत्नी के मध्य प्रेम में पत्नी अथवा पति का परस्पर वह पवित्र और दिव्य रूप सामने आता है जो अलौकिक और आदर्श रूप है।

2. अश्लीलता का परिहार- इन कहानियों में अश्लीलता और कुत्सित भावना बहुत कम दिखाई देती है। प्रेम का भद्दा प्रदर्शन लोक कथाओं की विशेषता नहीं है।

3. नैसर्गिक प्रवृत्ति से साहचर्य- मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्तियों यथा- सुख-दुःख, आशा-निराशा, काम-क्रोध, मद-लोभ, एषणा इत्यादि का वर्णन इन कहानियों में सहजता से पाया जाता है। लोक कथाओं की रचना जीवन की मूल-भूत प्रवृत्तियों को लेकर ही की जाती हैं। इन कथाओं में ऐसी घटनाओं का वर्णन होता है जो शाश्वत सत्य की प्रतीक हैं।

4. मंगल भाव- इन कहानियों में विश्व के लिए मंगल की कामना है। ग्रामीण कथाकार संसार का भला चाहता है। वह किसी को दुःखी और अभावग्रस्त नहीं देखना चाहता है।

5. सुखान्त कहानियाँ- अधिकांश लोक कथाओं का अंत सुखमय होता है। यद्यपि इन कहानियों में जीवन के संघर्ष तो पाये जाते हैं लेकिन अंत निराशा को आशा में परिणत होते हुए और दुःख को सुख में बदलते हुए, हानि को लाभ में परिवर्तित होते हुए दिखाने की चेष्टा रही है। अक्सर इन कहानियों का अंत इस 'भरत-वाक्य' से होता है- "भगवान ने जिस प्रकार अमुक व्यक्ति के सुखके दिनों को लौटाया उसी प्रकार सभी के सुख के दिन लौटें।"

6. अलौकिकता का प्राधान्य- अधिकांश लोक कथाओं में अलौकिकता का अंश देखने को मिलता है। भूत-प्रेत, दानव-परी इत्यादि से सम्बन्धित कहानियों में अलौकिकता का पुट व अद्भूत रस की प्रधानता देखने को मिलती है। इन कहानियों में रोमांचकता के साथ-साथ उत्सुकता बनी रहती है।

7. वर्णन की स्वभाविकता- लोक कथाओं की एक विशेषता यह भी है कि इन कहानियों में स्वाभाविकता रहती है। जो घटना जैसी है उसका उसी रूप में वर्णन करना लोक कथाओं का प्रधान लक्षण है। इन कथाओं में अतिशयोक्ति का पुट नहीं मिलता।

8. सरल स्वाभाविक शैली- लोक कथाओं की शैली बड़ी सरल और सीधी होती है। इनमें जिन वाक्यों का प्रयोग होता है वे बहुत छोटे और सरल होते हैं। लोक कथाओं में शब्दांडम्बर का अभाव रहता है। इनकी भाषा अकृत्रिम होती है। डा. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार "ये कथाएँ अबाध गति से प्रवाहमान सरिताओं की भाँति हैं जिनमें अवगाहन कर जन का मानस आनन्द लेता है, जिनका जल निर्मल तथा शीतल होने के कारण पान करने वालो को संजीवनी शक्ति प्रदान करता है।"³⁸

पाश्चात्य लोक कथाओं का वर्गीकरण -

पाश्चात्य लोक कथाओं को हम निम्नांकित वर्गों में बाँट सकते हैं -

1. फेबुल- पाश्चात्य लोक साहित्य में जानवरों से संबन्ध रखने वाली कथाओं को फेबुल कहते हैं। इन कथाओं में पशु पक्षी और जानवरों को मनुष्य के समान बातचीत और अभिनय करते हुए देखा जा सकता है। इन कथाओं के माध्यम से मनुष्य को नैतिक शिक्षा देने की प्रवृत्ति रही है। फेबुल लोक कथाओं को प्रारम्भिक रूप है। पशु-पक्षी सम्बन्धी कथाओं में जानवरों की विशेषताओं का उद्घाटन नहीं किया जाता बल्कि उनके द्वारा मनुष्य के जीवन के किसी अंश को लेकर उस पर व्यंग्योक्ति रहती है। भारत में 'हितोपदेश' व 'पंचतंत्र' की कहानियाँ इसी प्रकार की कहानियाँ हैं।

'कथा सरित्सागर', 'शुक सप्तति' इसीप्रकार की कहानियाँ हैं। पश्चिमी देशों में 'इसाप्स फेबुल्स' के नाम से इसी प्रकार की कहानियाँ संग्रहित हैं।

2. फेबलियो- ये कहानियाँ पद्यमयी गाथाओं के रूप में उपलब्ध हैं। फ्रांस में बारहवीं से चौदहवीं शताब्दी के बीच इस प्रकार की रचनाओं की प्रधानता थी। फ्रांस से इनका प्रचार समग्र यूरोप में हुआ। 'केंटरबरी टेल्स' में इसीप्रकार की लोक गाथाएँ मिलती हैं। इन कहानियों का प्रधान विषय चालाक पति', 'अविश्वासपात्र पत्नी' व धोखेबाज प्रेमी होता है। 'द डॉग इन द क्लोजिट' इसी प्रकार की कथा है।

3. फेयरी- यह शब्द उन अमानवीय जीवों को बोधित करता है जो प्रायः अदृश्य होते हैं। फेयरी शब्द लैटिन के फेटुमसे बना है। जिसका अर्थ है जादू या इन्द्रजाल। ऐसे जीव जो ऐन्द्रजालिक ताकतों से भरे होते हैं, उन्हें फेयरी कहा जाता है। हिन्दी में 'फेयरी' के लिए 'अप्सरा' या 'गन्धर्व' शब्द का प्रयोग होता है। पाश्चात्य देशों में फेयरी पुल्लिंग के लिए प्रयोग होता है जबकि भारत में इसकी कल्पना स्त्री रूप में की गई है। पाश्चात्य देशों में फेयरी एक ऐसा बौना है जो अपनी इच्छानुसार अदृश्य हो सकता है। यह हरे रंग का होता है। इसके बाल भी हरे होते हैं और यह पर्वत कन्दराओं के मध्य में निवास करता है। फेयरी कभी किसी को नुकसान नहीं पहुँचाता यदि इसे कष्ट दिया जाता है तो यह खेतों के अनाज को नष्ट कर और दूध को दुह कर बदला लेता है। भारत में फेयरी की कल्पना अत्यंत अलौकिक सुन्दरी से की गई है जो अपने सौन्दर्य से लोक जीवन को मोहित करती हैं। भारत, यूरोप और अरब देशों में परी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। इन कथाओं को 'फेयरी टेल' कहते हैं। जर्मन भाषा में इन्हें 'मार्चन', स्वीडिश में 'सागा' कहा जाता है। परियों द्वारा मनुष्य को उपकृत करने, धनधान्य से प्रपूरित करने की अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। अनेक फ्रांसीसी कहानियों में इन्हें कारागार से मुक्त करने की भी कथा आयी है। भारतीय परी कथाओं में भूखे को भोजन और रोगी को रोग मुक्त करने की कथाएँ भी देखने को मिलती हैं। गढ़वाली लोक कथाओं में परियों द्वारा अपहरण की भी बात है, जिन्हें आंछरी भी कहा जाता है। जर्मनी भाषा में 'ग्रिम्स फेयरी टेल्स' प्रसिद्ध हैं।

4. लीजेण्ड - लीजेण्ड का मूल अर्थ धार्मिक पूजा-पाठ के समय किये जाने वाले पाठ से था। कालान्तर में इनका अभिप्राय धार्मिक चरित्र के नाम पर बलिदान होने वाले वीरों की गाथा से होने लगा। किसी व्यक्ति या किसी स्थान के विषय में कहीं गयी परम्परागत मौखिक कहानियाँ भी लीजेण्ड के अन्तर्गत माना गया। डा. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार “लीजेण्ड लोक कथाओं का वह प्रकार है जिसके कथानक में तथ्य घटनातथा परम्परादोनों का समन्वय पाया जाता है.....लीजेण्ड सत्य घटना के रूप में कही जाती है परंतु मिथ की सच्चाई उसके श्रोताओं में विश्वास के रूप में आश्रित होती है।”³⁹ यूरोपीय देशों में हरकुलीज की कथा में मिथ और लीजेण्ड दोनों का ही समन्वय है। इसीप्रकार भारत की विक्रमादित्य की कथाओं को हम लीजेण्ड कह सकते हैं लेकिन बलि की कथा मिथ होगी। स्विनटर्न ने ‘लीजेण्ड ऑफ दि पंजाब’ के नाम से पंजाबी लोक कथाओं का संकलन भी किया है।

5. मिथ- मिथ वे कथाएँ है जो किसी अतिप्राचीन, धार्मिक विश्वास पर आधारित होती हैं। यह प्राचीन वीर, देवी-देवता तथा स्थानीय जनता से सम्बन्धित होती है। जी.एल.गोमी ने विज्ञान पूर्व युग की घटनाओं को मिथ माना है। हिन्दी में इन कथाओं को पौराणिक कथाएँ कहते हैं। कोई भी पौराणिक कथा तभी तक मिथ कही जाती है जब तक उसके पात्र देवी देवता हैं तथा उन पात्रों में देवत्व की भावना है। यही पात्र जब देवत्व की कोटि से नीचे उतरकर मनुष्यत्व की कोटि में आते हैं तो लीजेण्ड कहलाते हैं। आदिम जातियों में प्रचलित अधिकांश कथाएँ मिथ हैं। डा. एलविन ने मध्यप्रदेश की पौराणिक कथाओं का संग्रह ‘मिथ्स ऑफ मिडिल इण्डिया’ नाम से किया है।

6. मोटिफ- मोटिफ शब्द का प्रयोग परम्परागत कथाओं के किसी तत्व के लिए किया जाता है। स्विथ टॉमसन के विचारानुसार मोटिफ वह अंश है जिसमें फॉकलोर के किसी भाग को विश्लेषित किया जा सके। यह तत्व साधारण न होकर असाधारण होता है। यह ऐसा होना चाहिए कि सर्वसाधारण जनता इसको स्मरण कर सके। भारतीय लोक कथाओं में सियार को चालाक या धूर्त या काइयाँ जानवर के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। इसीप्रकार गधा मूर्ख के रूप में दिखाया गया है यह दोनों ही एक प्रकार से मोटिफ हैं। मोटिफ का क्षेत्र अन्तराष्ट्रीय है। विश्व की सभी लोक कथाओं में मोटिफ मिलता है।

7. टाइप(जलचम)- पाश्चात्य विद्वान उन लोक कथाओं के लिए इस शब्द का प्रयोग करते हैं जो मौखिक परम्परा में अपने को स्वतंत्र सिद्ध करती हो। डा. कृष्णदेव उपाध्याय के शब्दों में “कोई कथा जो स्वतंत्र कहानी के रूप में कहीं जाती है टाइप समझी जाती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अपनी कुछ विशेषताओं के कारण कोई कथा का वर्ग दूसरी कथाओं से पृथक होता है। इस वर्ग को टाइप कहते हैं।”

बोध प्रश्न:-

प्रश्न 5 लोक गाथा और लोक कथा में क्या अन्तर है?

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं, कुछ गलत। उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

झ. लोक कथा को अंग्रेजी में बैलेड कहते हैं। ()

ज. कोई कथा जो स्वतंत्र कहानी के रूप में कही जाती है टाइप समझी जाती है। ()

4. लोक-नाट्य- महाकवि कालिदास कहते हैं 'नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्' अर्थात् नाट्य जन मन के अनुरंजन का सर्वोत्कृष्ट साधन है। ग्रामीण जनता नाटकों को देखकर प्रसन्नता का अनुभव करती है। भारतवर्ष में नाटकों की परम्परा तो ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से मानी जाती है। वेदों में भी नाटकीय तत्वों के बीज उपलब्ध होते हैं। भारतवर्ष में मध्यकाल में लोक धर्मी नाट्य परम्पराओं का जन्म हुआ इसमें रामलीला और रासलीला प्रमुख हैं। गौरांग महाप्रभु के काल में 'यात्रा' या 'जात्रा' लोक नाट्य के ही रूप हैं।

लोक नाटकों का लोक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। लोक नाटक लोक सम्बन्धित उत्सवों, अवसरों तथा मांगलिक कार्यों में अभिनित होते हैं। विवाह के अवसर पर अनेक जातियों में स्त्रियाँ बरात विदा हो जाने पर स्वांग रचती हैं। लोक जीवन में विभिन्न उत्सवों पर पुरुष और बालक भी इन नाटकों को अभिनीत करते हैं।

लोक नाटकों के प्रकार-

लोक नाटक दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं-1. प्रहसनात्मक 2. नृत्यनाट्यात्मक (डांस ड्रामा)। पहले प्रकार का नाटक जन समुदाय को अनुरंजित करने के लिए होता है और इसका विषय हास्य होता है। लखनऊ और बनारस के भांड ऐसे प्रहसनों के लिए प्रसिद्ध हैं। दूसरे प्रकार के नाटक वे हैं जो किसी सामाजिक और पौराणिक घटना को लेकर अभिनीत किये जाते हैं। नृत्य, संगीत और अभिनय इन तीनों का समन्वय यहाँ दिखाई पड़ता है। भोजपुरी प्रदेश का 'बिदेसिया' लोक नाट्य इसका सुन्दर उदाहरण है। गढ़वाल प्रदेश में पांडव कथा पर आधारित अनेक लोक नाट्य प्रचलित हैं।

लोक नाट्य की विशेषताएँ-

लोक नाट्य की निम्नांकित विशेषताएँ हैं-

1. भाषा- लोक नाट्यों की भाषा सरल, सीधी होती है। जिस प्रदेश में नाटक होता है, नट उसी क्षेत्र की बोली का प्रयोग करते हैं। दैनिक जीवन में सामान्य जनता जिस भाषा का प्रयोग करती है लोक नाटककार उसी भाषा का प्रयोग करते हैं। गद्य के बीच में पद्य का भी पुट रहता है।

2. संवाद- लोक नाट्यों के संवाद बहुत छोटे तथा सरल होते हैं। कहीं तो प्रश्न और उत्तर केवल कुछ शब्दों तक ही सीमित हो जाते हैं। संवाद संक्षिप्त, क्षिप्र व ग्राह्य होते हैं।
3. कथानक- लोक नाटकों का कथानक ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक और धार्मिक होता है। बंगाल की 'जात्रा' और 'कीर्तन' धार्मिक नाटक हैं। राजस्थान में चारण परम्परा में प्रस्तुत नाटक ऐतिहासिक हैं तो केरल में 'यक्ष गान' की विषय वस्तु पौराणिक है। उत्तर प्रदेश में अभिनीत 'रामलीला' और 'रासलीला' का आधार धार्मिक है। यही नहीं नौटंकी तथा स्वांग की कथावस्तु समाज से सम्बन्ध रखती है।
4. पात्र- लोक नाट्यों में प्रायः पुरुष ही अभिनेता होते हैं। स्त्री पात्रों का कार्य भी अधिकांशतः पुरुष पात्रों द्वारा ही सम्पादित किया जाता है। कुछ लोक नाट्य मण्डलियों में स्त्रियों को भी रख लिया जाता है। ये पात्र समाज के चिर-परिचित व्यक्ति हैं जैसे मक्खी चूस बनिया, खूसट बुड्ढा, कुलटा स्त्री, शराबी पति, पाखंडी साधु, दुष्टा सास और अत्याचारी अफसर इत्यादि।
5. चरित्र-चित्रण- लोक नाट्यों में चरित्र चित्रण बड़ा स्वाभाविक होता है। बीच-बीच में विदूषक अपने हाव भावों से जनता का मनोरंजन करने की चेष्टा करता है।
6. रूप-योजना- लोक नाटकों में विशेष प्रकार के प्रसाधनों, अलंकरणों और बहुमूल्य वस्त्रों की आवश्यकता नहीं होती। कोयला, काजल, खडिया आदि देशी प्रसाधनों से ही अपने को सुसज्जित करके अभिनेता मंच पर उतर जाते हैं।
7. रंग मंच- लोक नाट्य खुले रंग मंच पर अभिनीत होते हैं। जनता मैदान में आकाश के नीचे बैठकर इन नाटकों का आनन्द लेती है। किसी भी मंदिर का चबूतरा मंच का काम दे जाता है। कहीं तख्ते बिछाकर मंच तैयार कर लिया जाता है। रंग मंचों पर पर्दे प्रायः नहीं होते। सारी कथा एक अविच्छिन्न क्रम में अभिनीत की जाती है।

भारत के प्रसिद्ध लोक नाटक-

उत्तर भारत में 'रामलीला' और 'रासलीला' तो प्रचलित है ही, मालवा का 'माच' नामक नाटक भी अत्यंत लोक प्रिय है। राजस्थान में 'ख्याल', हाथरस की 'नौटंकी', उत्तर प्रदेश का 'स्वांग', ब्रजमंडल का 'भगत', गुजरात का 'भवाई', बंगाल की 'जात्रा' और 'गम्भीरा', महाराष्ट्र का 'तमाशा', ललित, गोंधल, बहुरूपिया और 'दशावतार', दक्षिण भाषा का 'यक्षगान', तेलुगा का 'विधिभागवतम्' देश के कुछ प्रसिद्ध लोक नाट्य हैं।

बोध प्रश्न:-

प्रश्न 6. लोक नाट्य से आप क्या समझते हैं? भारत के प्रसिद्ध लोक नाटकों का नामोल्लेख कीजिए।

प्रश्न 6. नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं, कुछ गलत। उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

ट. 'ख्याल', राजस्थान का लोक नाट्य है। ()

ठ. 'भवाई' बंगाल का लोक नाट्य है। ()

5. लोक-सुभाषित- ग्रामीण जनता अपने दैनिक जीवन में अनेक मुहावरों, कहावतों, पहेलियों, सूक्तियों और सुभाषितों का प्रयोग करती है। इन मुहावरों और कहावतों में चिरसंचित अनुभव की ज्ञान राशि भरी हुई है। इनके माध्यम से हमारे धार्मिक और समाजिक प्रथाओं का पता चलता है। कई सूक्तियाँ नीतिवचनों के रूप में भी उपलब्ध रही हैं।

मुहावरा अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है- 'अभ्यास' या 'बातचीत'। डा. शेरसिंह बिष्ट ने इसका लक्षण इस प्रकार दिया है- "मुहावरा किसी भी भाषा में प्रचलित वह विलक्षण एवं प्रभावशाली वाक्यांश है, जिसकी प्रतीति अभिधेय अर्थ से न होकर लक्षणा अथवा व्यंजना से होती है।"⁴⁰ प्रत्येक मुहावरा एक वाक्यांश है परंतु प्रत्येक वाक्यांश एक मुहावरा नहीं होता। मुहावरों का स्वरूप रूढ़ और स्थिर होता है, इसमें किसी तरह का परिवर्तन करने पर प्रचलित शब्द के स्थान पर अन्य पर्यायवाची रखने पर वह मुहावरा नहीं रह जाता। वस्तुतः मुहावरा एक लाक्षणिक वाक्यांश है जिसका प्रयोग भाषा में चमत्कार और आकर्षण पैदा करने के लिए किया जाता है। मुहावरों के माध्यम से अभिव्यक्ति सशक्त बनती है। लोक भाषाएँ मुहावरों का अकूत भण्डार हैं। मुहावरों को अंग्रेजी में 'इडियम' भी कहते हैं। अरबी में मुहावरों का अर्थ सीमित तथा संकुचित है लेकिन उर्दू तथा हिन्दी में यह व्यापक भाव को द्योतित करता है। मुहावरों की उत्पत्ति के विषय में पं. अयोध्या सिंह उपाध्याय का मानना है- "मनुष्य के कार्य क्षेत्र विस्तृत हैं। उसके मानसिक भाव भी अनन्त हैं। घटना और कार्यकारण घटनाओं से जैसे असंख्य वाक्यों की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार मुहावरों की भी। अनेक अवसर ऐसे उपस्थित होते हैं जब मनुष्य अपने मन के भावों को कारण विशेष से संकेत अथवा इंगित किंवा व्यंग्य द्वारा प्रकट करना चाहता है। कभी कई एक ऐसे भावों को थोड़े शब्दों में विवृत करने का उद्योग करता है, जिसके अधिक लम्बे, चौड़े वाक्यों का जाल छिन्न करना उसे अभिष्ट होता है। प्रायः हास, परिहास, घृणा, आवेग, उत्साह आदि के अवसर पर उस प्रवृत्ति के अनुकूल वाक्य योजना देखी जाती हैं। सामयिक अवस्था और परिस्थिति का वाक्य विन्यास पर बहुत प्रभाव पड़ता है और इसी प्रकार के साधनों से मुहावरों का आविर्भाव होता है।"⁴¹

मनुष्य कभी कुछ भावों को गोपन रखना चाहता है और उन्हें ऐसी भाषा में प्रकट करना चाहता है जो सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य न हो। इसके कारण भी मुहावरों का जन्म होता है। उदाहरण के

लिए 'नौ दो ग्यारह होना', या 'रफू चक्कर होना' का अर्थ भाग जाना होता है लेकिन अभिधा से यह सूचित नहीं होता। मुहावरों भाषा के प्राण हैं और इनसे वाक्यों में रोचकता आती है। डा. त्रिपाठी के अनुसार 'मुहावरा किसी बोली या भाषा में प्रयुक्त होने वाला वह अपूर्ण वाक्य खण्ड है जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सतेज, रोचक और चूस्त बना देता है। संसार में मनुष्य ने अपने लोक व्यवहार में जिन-जिन वस्तुओं और विचारों को बड़े कौतूहल से देखा और समझा और बार-बार उनका अनुभव किया उन्हीं को उसने शब्दों में बाँध दिया है। वे ही मुहावरे कहलाते हैं।'⁴²

मुहावरों का इतिहास उतना प्राचीन नहीं है जितना भाषा की उत्पत्ति का। संस्कृत साहित्य में इनका व्यवहार दिखाई पड़ता है। राष्ट्रभाषा हिन्दी में मुहावरों की संख्या बहुत अधिक है। खंग विलास, प्रेस पटना से प्रकाशित 'बोल चाल' नामक पुस्तक में पं.अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने अनेक मुहावरों का संकलन किया है। भोजपुरी, ब्रज, अवधी, बुंदेलखंडी में अनेक मौलिक मुहावरों की छटा दिखाई पड़ती है। मुहावरे जीवन के हर क्षेत्र में बिखरे हैं। डा. कृष्ण देव उपाध्याय के अनुसार 'मुहावरे मानव की गति, क्रिया, अनुभूति, उसके शरीर के अंग-उपांगों, भोजन के पदार्थों, घर-गृहस्थी के काम-काज, प्रकृति के विभिन्न तत्त्व- आकाश, आग, हवा, पानी और पृथ्वी-दिन-रात, पशु-पक्षी, पेड़-पौधों और जीव-जन्तु सभी से संबन्ध रखते हैं। कहने का आश्रय यह है कि स्थावर और जंगम जितनी सृष्टि है उन सभी से इनका संबन्ध है।'⁴³ मुहावरों में जनता के जीवन की झाँकी है। जनता की आर्थिक, परिवारिक, समाजिक सभी स्थितियाँ इन मुहावरों में दिखाई पड़ती हैं। 'कंगाली में आटा गीला', 'पेट काटना', 'सत्तू बाँधकर पीछे पड़ना', 'छीपा बजाना' इत्यादि मुहावरे इसके द्योतक हैं। 'गोतरू चार करना' एक भोजपुरी मुहावरा है। जिसका अर्थ है गाली-गलौज करना। यह संस्कृत के 'गोत्रोच्चारण' से निकला है। विवाह के समय वर कन्या की वंशावली का वर्णन गोत्रोच्चारण कहलाता है लेकिन जब कोई किसी बाप दादा को लेकर गाली देने लगता है तब इस मुहावरे का प्रयोग होता है। कहावतें लोक मानस द्वारा युगों से संचित जीवन और जगत के कटु मधुर अनुभवों से प्राप्त ज्ञान है। सामान्यतः कहावतें घटना मूलक होती हैं। जीवन जगत में घटित किसी घटना विशेष से प्राप्त अनुभव सीख या उपदेश के स्वरूप में कहावत का रूप ले लेती हैं। लोक साहित्य में अनेक कहावतों का भण्डार है। लोक साहित्य में लोकोक्तियों या कहावतों का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। इसके प्रयोग से भाषा में एक बल आता है जो श्रोता पर सीधा प्रभाव डालती है। अनुसंधानों से पता चलता है कि वेदों में भी लोकोक्तियों की सत्ता थी। उपनिषदों और संस्कृत साहित्य में इसकी भरमार है। पंचतंत्र, हितोपदेश आदि ग्रंथों में नीति संबन्धी उक्तियाँ मिल जाती हैं। संस्कृत में लोकोक्तियों को सुभाषित या सूक्त भी कहा जाता है। सूक्ति का अर्थ है- सुन्दर रीति से कहा गया कथना। इसी उक्ति को यदि लोक अर्थात् साधारण मनुष्य प्रयोग में लाते हैं तो वह लोकोक्ति कहलाती है। प्रसिद्ध विद्वान कर्नल जैकब ने 'लौकिक न्यायांजलि' नामक ग्रंथ में न्याय से सम्बन्धी संस्कृत की उक्तियों का संग्रह किया है। सन् 1886 में फेलन ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'डिक्शनरी ऑफ हिन्दुस्तानी प्रोवर्ब्स' में मारवाड़ी, पंजाबी, भोजपुरी, मैथली कहावतों का

संकलन किया। इसीप्रकार प्रसिद्ध विद्वान जे.एच.नोबल्स ने काश्मीरी लोकोक्तियों का संग्रह किया। इसी दिशा में श्रीमति सुमित्रादेवी ने 'देरेवाली कहावतें' को संकलन किया है। श्री शलिग्राम वैष्णव ने नागरी प्रचारणी पत्रिका में गढ़वाली भाषा में पाखाणा लिखकर गढ़वाली लोकोक्तियों पर प्रकाश डाला है। सन् 1892 में उप्रेती ने प्रोवर्ब्स एण्ड 'फोकलोर ऑफ कुमाउ एण्ड गढ़वाल' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया। मेरठ क्षेत्र की लोकोक्तियों को राय राजेन्द्र सिंह वर्मा ने नागरी प्रचारणी पत्रिका में प्रकाशित करवाया। रतनलाल मेहता कृत 'मालवीय कहावतें' और उदय नारायण तिवारी कृत 'भोजपुरी लोकोक्तियों का संग्रह' इस दिशा में स्तुत्य प्रयास है। डा. कन्हैया लाल सहल द्वारा रचित 'राजस्थानी कहावतें: एक अध्ययन' राजस्थानी लोकोक्तियों पर प्रकाश डालता है।

2.6 लोकोक्तियों का वर्गीकरण

डा. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकोक्तियों को पाँच वर्गों में वर्गीकृत किया है- 1. स्थान संबन्धी 2. जाति संबन्धी 3. प्रकृति तथा कृषि संबन्धी 4. पशु पक्षी संबन्धी 5. प्रकीर्ण संबन्धी।⁴⁴

1. स्थान संबन्धी- बहुत सी ऐसी लोकोक्तियाँ पायी जाती हैं जो किसी देश या स्थान विशेष के विशेषताओं को प्रकट करती हैं। जैसे बलिया के पश्चिमी क्षेत्र 'बाँगर' में अन्न बहुत कम पैदा होता है। अतः वहाँ के लिए कहावत प्रचलित है- 'का बाँगर का अन्ने, का जोलाहा का धन्ने'

2. जाति संबन्धी- भारत की विभिन्न जातियों की विशेषताओं को प्रकट करने वाली अनेक लोकोक्तियाँ समाज में प्रचलित हैं। इनमें परस्पर द्वेष भाव की परिचायक निम्न कहावत हैं- 'बाँभन, कुकुर, नाऊ। आपण जाति देखि गुराऊ। प्रसिद्ध विद्वान डा. रसल ने 'पीपुल्स ऑफ इण्डिया' नामक पुस्तक में विभिन्न जातियों से संबन्धित लोकोक्तियों का संकलन किया है।

3. प्रकृति तथा कृषि संबन्धी- अनेक लोकोक्तियाँ प्रकृति से संबन्ध रखती हैं। ऋतु ज्ञान संबन्धी अनेक महत्वपूर्ण बातें अर्थात् किन नक्षत्रों में वर्षा होगी या अकाल पड़ेगा का ज्ञान इन लोकोक्तियों में निहित है। इसीप्रकार सिंचाई, बुआई, निराई, कटाई, दवाई, मडाई आदि से संबन्धित लोकोक्तियाँ पायी जाती हैं। घाघ तथा भट्टी की वायु तथा वर्षा संबन्धी लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं- 'सावन में पुरवईया, भादों में पछियाँवा हरवाहें हर छोड़ दें, लरिका जाय जियावा।' अर्थात् सावन में पुरवईया हवा और भादों में पछवा हवा चले तो वर्षा न होने के कारण बड़ा कष्ट होगा। इसी प्रकार पूर्वाषाढा नक्षत्र में पूरवैया हवा चले तो इतनी वर्षा होगी कि सूखी नदी में भी नाव चल सकती है- 'जो पुरवा पुरवाइ पावै, सूखी नदी नाव चलावे।' इसीप्रकार कृषि जीवन से संबन्धित ऐसा कोई भी अंग नहीं है जिस विषय पर लोकोक्तियाँ प्रचलित न हों। ऊख के खेत को कितना जोतना चाहिए इस विषय में घाघ का कथन है- 'तीन कियारी तेरह गोड़, तब देखी ऊखी के पोर'

4. पशु पक्षी संबन्धी- कृषि कर्म के साधन बैल इत्यादि पर भी अनेक लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं। अच्छे बुरे बैलों के लक्षण, गीदड़, कौवा आदि के बोलने से संबन्धी शुभ-अशुभ लक्षण इन लोकोक्तियों में प्रचलित हैं। बुरे बैल के लक्षण कुछ इस प्रकार हैं- ‘उजर बरौनी मुँह का महुवा, ताहि देखि हरवहवा रोवा।’ इसीप्रकार बन्दर, हाथी घोड़े से संबन्धी अनेक कहावतें प्रचलित हैं।

5. प्रकीर्ण- प्रकीर्ण लोकोक्तियों में हर प्रकार की उक्तियाँ देखी जा सकती हैं। इसमें नीति, उपदेश, स्वस्थ रहने की विधि अर्थात् जीवन के सभी पहलुओं को छूती हुई लोकोक्तियाँ मिल जाती हैं। घाघ की नीति वचन को देखिये- ‘ओछो मंत्री राजै नासै, ताल बिनासै काई। सुख साहिबी फूट बिनासै, घग्घा पैर बिवाई।’

ब्रज में लोकोक्तियों के अन्नमिल्ला, अचका, भेरि, खुंसि, औठपाये, ओलना, अहागड्ड इत्यादि रूप देखने को मिलते हैं। वैसे तो लोकोक्तियों के रचयिता का ठीक-ठीक पता नहीं लगता लेकिन घाघ, भड्डरी, लाल बुझक्कड़ इत्यादि लोकोक्तिकार भारत में प्रसिद्ध हैं।

हिन्दी साहित्य कोश भाग-1, में पहेलियों की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी है- ‘‘पहेलियाँ केवल बच्चों के मनोरंजन की वस्तुएँ नहीं, ये समाज विशेष की मनोज्ञता को प्रकट करती हैं और उसकी रुचि पर प्रकाश डालती हैं।’’ फ्रेजर के अनुसार ‘‘पहेलियों की रचना अथवा उदय उस समय हुआ होगा, जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में अड़चन पड़ी होगी।’’⁴⁵ लोक साहित्य में पहेलियों की भरमार है। भारतवर्ष के गौंड और बिरहोर जातियों में विवाह के अनुष्ठानों में पहेली बुझाना अत्यंत आवश्यक है। डा.शेर सिंह बिष्ट के अनुसार ‘‘पहेलियाँ वास्तव में किसी वस्तु का चित्रण करती हैं-ऐसा चित्रण, जिसमें अप्रकट के द्वारा प्रकट का संकेत होता है। अप्रकट, इन पहेलियों में बहुधा वस्तु के उपमान के रूप में आता है। ये उपमान पहेली पूछने वाले के परिवेश से सम्बन्धित होते हैं। अतः यह स्वभाविक ही है कि गाँव की पहेलियों में ऐसे उपमान भी ग्रामीण वातावरण से ही लिये जाते हैं।’’⁴⁶ पहेलियाँ, एक प्रकार से वस्तु को सुझाने वाले उपमानों से निर्मित शब्द चित्रावली हैं, जिनमें चित्र प्रस्तुत करके यह पूछा जाता है कि यह किसका चित्र है। पर इससे यह न समझना चाहिए कि उपमानों द्वारा यह चित्र पूर्ण होता है। उपमानों द्वारा जो चित्र निर्मित होता है, वह स्पष्ट होता है, पर वह यथा संभव निश्चित संकेत दे जाता है जो किसी अन्य वस्तु का बोध नहीं दे सकता।⁴⁷ कुमाउनी लोक भाषा में पहेलियों के लिए ‘आण’ या ‘आन’ शब्द का प्रयोग प्रचलित है और गढ़वाल और कुमाऊँ में इसकी समृद्ध लोक परम्परा रही है।

किसी व्यक्ति की बुद्धि-परीक्षा के लिए पहेलियों का प्रयोग किया जाता रहा है। मध्यप्रदेश के मंडला जिले, भोजपुर प्रदेश में विवाह के अवसर पर पहेली पूछने की प्रथा है। पहेलियों की उत्पत्ति का कारण मनोरंजन भी है। दिन भर कठोर श्रम के बाद रात्रि में पहेलियाँ बुझाकर अपने दिल दिमाग को ताजा रखने की भी प्रवृत्ति रही होगी। प्राचीन समय में जब गाँवों में मनोरंजन के अन्य कोई साधन नहीं रहे होंगे वहाँ पहेलियों के द्वारा ही मन बहलाया जाता रहा होगा। वैदिक

काल में भी पहेली का अस्तित्व था। कृष्ण की गीता में तथा महाभारत में यक्ष युधिष्ठिर संवाद भी पहेली का अन्यतम उदाहरण है- 'का वार्ता किमाश्चर्यं, कह पन्था? कश्च मोदते। इति मे चतुरः प्रश्नान्, उत्तरं दत्वा जलं पिबा।' जन-जीवन में पहेलियों के अनेक प्रकार उपलब्ध हैं। डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने इन्हें सात भागों में विभक्त किया है- 1. खेती संबन्धी पहेलियाँ 2. भोज्य पदार्थ सम्बन्धी पहेलियाँ 3. घरेलू सम्बन्धी पहेलियाँ 4. प्राणि सम्बन्धी पहेलियाँ 5. प्रकृति सम्बन्धी पहेलियाँ 6. शरीर सम्बन्धी पहेलियाँ 7. प्रकीर्ण पहेलियाँ⁴⁸ कुछ पहेलियाँ निम्नवत् हैं- 'अगहन पड़ठ चैत के प्याट, तेहि पर पण्डित करैं झप्याटा। है नेरे पैहो ना हेरे, पण्डित कहे विगहपुर केरे।।' मथुरा के पण्डित भोजन भट्ट होते हैं। उनकी इस भोजन प्रियता को लेकर यह पहेली बनाई है जिसका उत्तर है 'कचौरी'। कंद सफेद और लाल दोनों तरह का होता है अतः उसे लाल छड़ी कहते हैं और मूली के संबन्ध में बगूला कहा जाता है- 'एक बाग में ऐसा हुआ, आधा बंगुला आधा सुआ।' (मूली)

अंततः स्पष्ट है कि लोक साहित्य अपने में अत्यंत समर्थ और सार्थक है। लोक साहित्य की भाव-भूमि समग्र जीवन को स्पंदित करती है।

बोध प्रश्न:-

प्रश्न 7. लोक साहित्य को आप कितनी श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं?

.....

प्रश्न 7. नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं, कुछ गलत। उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

इ. मुहावरें, कहावतों और सूक्तियों को सुभाषित कहा जाता है। ()

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-1 लोक साहित्य श्रुति परम्परा पर आधारित पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता हुआ वह पारम्परिक साहित्य है जो निर्व्याक्तिक, सरल, गेय और अकृतिम, समसामायिक सजीव अभिव्यक्ति देता है।

सही गलत

क. (ग)

ख. (✓)

उत्तर-2 लोक वार्ता, लोक परम्पराओं, प्रथाओं, लोक विश्वासों, लोक साहित्य, नृत्य, समाज शास्त्र, भाषा शास्त्र, इतिहास तथा पुरातत्व आदि का अध्ययन है। इसमें सम्पूर्ण लोक संस्कृति का अध्ययन किया जाता है। जबकि लोक साहित्य में लोक गीतों, कथाओं, गाथाओं, मुहावरों और कहावतों का अध्ययन सम्भव है। लोक साहित्य, लोक वार्ता का एक अंग मात्र है।

सही गलत

ग. (✓)

घ. (✓)

उत्तर-3 लोक साहित्य मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता हुआ लोक जीवन की अनुभूतियों, परम्पराओं और विश्वासों को सहज, सरल भाव से प्रस्तुति देता है, जबकि अभिजात साहित्य लिखित रूप में प्रौढ़ता, परिपक्वता के साथ परिनिष्ठत रूप में प्रस्तुत होता है। अभिजात साहित्य अभिव्यक्ति के रूप में भी विशिष्टता चाहती है, जबकि लोक साहित्य की भाषा सीधी-सादी, सरल, व्यावहारिक और आइम्बर रहित होती है।

सही गलत

ड. (✓)

च. (✓)

उत्तर 4. लोक साहित्य के माध्यम से ही किसी समाज की यथा स्थिति व उसकी संस्कृति की सम्पूर्ण झलक मिलती है। जन-समुदाय विशेष की प्रथाएँ, परम्पराएँ, रूढ़ियाँ, विश्वास, मान्यताएँ, रिति रिवाजों का प्रतिबिम्ब उसके लोक साहित्य में पड़ता है।

सही गलत

छ. (✓)

ज. (✓)

उत्तर 5. लोक की भाषा अथवा बोली में पारम्परिक, स्थानीय अथवा पुरा आख्यानमूलक गेय अभिव्यक्ति लोक गाथा है। लोक गाथा का रचनाकार अज्ञात होता है, इसमें प्रमाणिक मूल पाठ की कमी होती है। लोक की भाषा अथवा बोली में परम्परा से चली आ रही मौखिक रूप से प्रचलित कहानी 'लोक कथा' है।

सही गलत

झ. (ग)

ञ. (✓)

उत्तर 6. ग्रामीण जनता द्वारा अभिनीत नाटक लोक नाट्य हैं, जिनकी रचना उनके द्वारा सरल, सीधी भाषा में की जाती है। उत्तर भारत में 'रामलीला' और 'रासलीला' तो प्रचलित है ही, मालवा का 'माच' नामक नाटक भी अत्यंत लोक प्रिय है। राजस्थान में 'ख्याल', हाथरस की 'नौटंकी', उत्तर प्रदेश का 'स्वांग', बृजमंडल का 'भगत', गुजरात का 'भवाई', बंगाल की 'जात्रा' और 'गम्भीरा', महाराष्ट्र का 'तमाशा', ललित, गोंधल, बहुरूपिया और 'दशावतार', दक्षिण भाषा का 'यक्षगान', तेलुगा का 'विधिभागवतम्' देश के कुछ प्रसिद्ध लोक नाट्य हैं।

सही गलत

ट. (✓)

ठ. (ग)

ड. (✓)

उत्तर 7. लोक साहित्य को हम पाँच श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं- लोक-गीत, लोक-गाथा, लोक-कथा, लोक-नाट्य और लोक सुभाषिता।

2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुमाउँनी लोक साहित्य एवं कुमाउँनी साहित्य, पृ01
2. लोक साहित्य विज्ञान, डा. सत्येन्द्र, पृ0 4
3. लोक साहित्य विमर्श, लोक साहित्य और जनजीवन, पृ0 9
4. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृ0 5
5. लोक साहित्य विज्ञान, डा. सत्येन्द्र, पृ0 5
6. हिन्दी साहित्य कोष, डा. धीरेन्द्र वर्मा, पृ0 682
7. कुमाउँ का लोक साहित्य, पृ0 1
8. लोक गीतों की सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि, डा. विद्या चौहान, पृ0 49

9. लोक साहित्य की भूमिका, डा. कृष्ण देव उपाध्याय, पृ0 22
10. वही, पृ0 21
11. कुमाउँनी लोक साहित्य एवं कुमाउँनी साहित्य, पृ03
12. वही, पृ03
13. जनपद, त्रैमासिक, खंड-1, अंक-2, पृ0 63-64
14. मेरिया लीच-डिक्शनरी, भाग-1, पृ0 399।
15. मेरिया लीच-डिक्शनरी, भाग-1, पृ0 399।
16. मेरिया लीच-डिक्शनरी, वही, भाग-1, पृ0 402-403।
17. मेरिया लीच-डिक्शनरी, भाग-1, पृ0 401।
18. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास, भाग-16, प्रस्तावना, पृ0 14
19. कुमाउँनी लोक साहित्य एवं कुमाउँनी साहित्य, पृ0 6
20. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन, पृ. 55
21. हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, लोक काव्य की भावात्मकता और रसात्मकता, रघुवंश, पृ0 503
22. लोक संस्कृति की समीक्षा, पृ0 8
23. कुमाउँनी लोक साहित्य एवं कुमाउँनी साहित्य, पृ0 13
24. कविता कौमुदी, भाग-5, प्रस्तावना, पृ0 1,2
25. कविता कौमुदी (गार्मगीत) पृ0 69
26. भारतीय लोक साहित्य, पृ0 53
27. लोक धारा, हीरामणि सिंह साथी, अपनी बात, पृ0 5
28. लोक धारा, हीरामणि सिंह साथी, प्रस्तावना, (लेखक)-डा. कैलाश गौतम, पृ0 2
29. मालवी लोक गीत; एक विवेचनात्मक अध्ययन, पृ0 18
30. हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 689

-
31. कविता कौमुदी, भाग 5, पृ0 45
 32. पारीक: राजस्थानी लोकगीत, पृ0 22-25
 33. श्याम परमार: भारतीय लोक साहित्य, पृ0 64-65
 34. लोक संस्कृति और इतिहास, बट्टी नारायण, पृ0 78
 35. लोक-साहित्य की भूमिका, लोक कथाओं का विश्लेषण, पृ0 131
 36. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, डा. सत्येन्द्र, पृ0 83
 37. फोक लिटरेचर ऑफ बंगाल, डा. सेन, पृ0 3
 38. लोक साहित्य की भूमिका, पृ0 136
 39. लोक साहित्य की भूमिका, पृ0 140
 40. कुमाउनी, शेर सिंह बिष्ट, पृ0 185
 41. बोलचाल, पृ0 36,37
 42. त्रिपथगा, अंक-6, मार्च 1956, पृ0 30
 43. लोक साहित्य की भूमिका, पृ0 164
 44. लोक साहित्य की भूमिका, पृ0 155
 45. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, पृ0 485
 46. कुमाउनी, शेर सिंह बिष्ट, पृ0 192
 47. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, पृ0 485
 48. लोक साहित्य की भूमिका, पृ0 172
-

2.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. लोक साहित्य की भूमिका, डा. कृष्ण देव उपाध्याय, साहित्य भवन प्रा0लि0, के0पी0कक्कड़ रोड़, इलाहाबाद-211003, पंचम संस्करण-1992
-

2. लोक संस्कृति और इतिहास, बद्री नारायण, लोक भारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, पहला संशोधित संस्करण-2010।
3. बुंदेलखंड की लोक संस्कृति का इतिहास, नमृदा प्रसाद गुप्त, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा0लि0 2/38, अंसारी रोड़ दरियागंज नई दिल्ली-110002,
4. लोक संस्कृति की रूपरेखा, डा. कृष्ण देव उपाध्याय, लोक भारती प्रकाशन, 15ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, संस्करण 1998
5. लोक धारा, हीरामणि सिंह साथी, अनंग प्रकाशन, बी-202, गली मंदिर वाली, उत्तरी घोण्डा, दिल्ली-110055, प्रथम संस्करण 1998
6. उत्तराखण्ड का लोक साहित्य और जन-जीवन, डा. सरला चन्दोला, तक्षशिला प्रकाशन, 23/4761, अंसारी रोड़, दरिया, गंज नई दिल्ली, 110002, प्रथम संस्करण 1999
7. लोक साहित्य विमर्श, डा. स्वर्णलता, रत्नस्मृति प्रकाशन, बीकानेर, प्रथम संस्करण 1979

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक से आप क्या समझते हैं? लोक साहित्य के स्वरूप और प्रवृत्ति पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

इकाई 3 लोक साहित्य के संरक्षण की समस्या एवं समाधान

इकाई की रूपरेखा

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 लोक साहित्य के संरक्षण की समस्या
 - 3.3.1 लोक साहित्य संग्रहकर्ता के उपादान
- 3.4 संकलनकर्ता के अपेक्षित गुण अथवा विशेषताएँ
 - 3.4.1 लोक साहित्य संग्रह की समस्याओं के समाधान
- 3.5 सारांश
- 3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 3.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 3.8 उपयोगी पाठ सामग्री
- 3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

लोक साहित्य लोक संस्कृति का प्राण है। यदि लोक जीवन न हो तो लोक मानव का जीवन नीरस और निष्क्रिय होकर यंत्रवत् हो जायेगा। उसकी सहज मुस्कुराहट, उत्साह, उल्लास, उमंग समाप्त ही हो जायेंगे। वास्तव में लोक साहित्य से प्रेरणा पाकर ही मानव जीवन सदैव ऊर्जावान बना रहता है इसलिए इस लोक साहित्य को बचाना एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य है। प्रस्तुत पाठ में इसके संरक्षण की दिशा में की जाने वाली कोशिशों पर चर्चा की जायेगी।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप

1. लोक साहित्य के संरक्षण के क्षेत्र में आने वाली समस्याओं से अवगत हो सकेंगे।
2. लोक साहित्य के संरक्षण में आने वाली कठिनाइयों के समाधान की दिशा में भी सोच सकेंगे।
3. लोक साहित्य के संरक्षण के महत्त्व को जान सकेंगे।

3.3 लोक साहित्य के संरक्षण की समस्या

लोक साहित्य का संरक्षण एक अत्यंत दुष्कर कार्य है। इसके पग-पग पर अनेक विभिन्न बाधाएँ प्रस्तुत होती रहती हैं। यह काम पर्याप्त समय और धन की अपेक्षा रखता है। इसका मूलरूप सुदूर पिछड़ी जातियों के मौखिक परम्परा में ही शेष है। आज की विकास की दौड़ ने इन ग्राम्य प्रदेशों में नागरिक सभ्यता का प्रभाव पड़ा है और ये लौकिक साहित्य आज अपना मूल रूप खोते जा रहे हैं। इसके संग्रह और संकलन का कार्य बहुत ही परिश्रम साध्य है। इस कार्य के निष्पादन में बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उत्तराखण्ड के लोक गीतों के संरक्षण में कुछ समस्याएँ निम्नवत् हैं-

1. लोक गायकों का अभाव- लोक गायक धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं। पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने लोक गीतों के प्रति लोगों के मन में उपेक्षा का भाव ला दिया है। वृद्ध पीढ़ी इन गीतों को संरक्षित रखे हुए है। अतः इनका संग्रह एक कठिन काम बन गया है।
2. पर्दे की प्रथा- ग्रामीण क्षेत्रों के अधिकांश स्त्रियाँ पर्दे का व्यवहार करती हैं। ऐसी स्थिति में इनके कंठ में संरक्षित गीतों का संग्रह करना एक दुष्कर कार्य है।
3. पुनरावृत्ति में असमर्थता- अकसर लोक गायक अपनी मस्ती में लोक गाथाओं का गान करते हैं। सुर, लय ताल से निबद्ध भावावेश में गाये गीतों को कभी-कभी यथावत् संग्रह करना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में किसी छूटी पंक्ति को पुनः गाने में गवैया असमर्थ होता है। इसीप्रकार स्त्रियों के मांगलिक अवसरों पर समवेत स्वर में गाये गीतों पर भी पुनः गायन की समस्या रहती है।
4. विशेष समय पर ही गायन का क्रम- लोक गीतों के संग्रह कर्ता के सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि ऋतु विशेष पर, अवसर विशेष पर या आयोजन विशेष पर ही कुछ गायन संभव हो पाते हैं। इन्हें कभी भी गवैयों से सुनने के अवसर नहीं मिल पाते। संग्रह कर्ता को अनुकूल समय की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। उदाहरण के लिए रोपनी के गीत, खेतों में धान रोपते समय ही गाये जाते हैं। प्रतिकूल अवसर पर इनकी उपलब्धि संभव नहीं। उत्तराखण्ड के संदर्भ में 'जागर' इत्यादि गीत पूजा या आयोजन के समय ही अनुकूल वातावरण की सृष्टि के साथ गाये जाते हैं। इनका संग्रह कही भी और कभी भी के आधार पर नहीं किया जा सकता।
5. संकोची मनोवृत्ति- प्रायः सुदूर ग्रामीणवर्ती क्षेत्र के लोग संकोची प्रवृत्ति के होते हैं। उनसे गीतों को समझकर लिपिबद्ध कराना अत्यंत कठिन काम है।
6. पहाड़ के दुर्गम प्रदेश- उत्तराखण्ड के अधिकांश प्रदेश दुर्गम, अतिदुर्गम पहाड़ियों पर बसे हैं। वहाँ तक पहुँचना बहुत टेढ़ी खीर है। यातायात के न तो उपयुक्त साधन है न कई क्षेत्रों में विधिवत् सड़कें ही बनी हैं। मीलों दूर पैदल चलकर सुदूर स्थलों पर पहुँचना संग्रह कर्ता के लिए अत्यंत

कष्टकारी है। यही नहीं यहाँ की भौगोलिक स्थिति और मौसम समय-समय पर रंग बदलता है। ऐसी स्थिति में संग्रह कर्ता से पर्याप्त धैर्य, साहस और जीवट की अपेक्षा की जाती है।

बोध प्रश्न:-

प्रश्न 1. 'लोक साहित्य संरक्षण की क्यों आवश्यकता है?

.....

प्रश्न 2. लोक साहित्य संरक्षण में आने वाली समस्याओं पर प्रकाश डालिये।

.....

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं कुछ गलत उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

क. लोक साहित्य संरक्षण अत्यंत सरल कार्य है। ()

ख. प्रायः सुदूर ग्रामीणवर्ती क्षेत्र के लोग संकोची प्रवृत्ति के होते हैं। ()

3.3.1 लोक साहित्य संग्रहकर्ता के उपादान

डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने लोक साहित्य संग्रह हेतु दो प्रकार के साधनों की चर्चा की है- 1. आंतरिक साधन 2. बाह्य साधन। आंतरिक साधन में उन्होंने लोक साहित्य प्रेमी के लिए कुछ गुणों की चर्चा की है, जिनमें ग्राम्य जनता से तादात्म्यीकरण, सहानुभूति, अनुसंधान चातुरी, तथ्यों की भली भाँति परख, स्थानीय शब्दों का प्रयोग, यथा श्रुतम् तथा लिखतम्, संग्रह की प्रमाणिकता, विभिन्न पाठों का संग्रह तथा बाह्य साधनों में नोट बुक, पैन, पेन्सिल, कैमरा रिकॉर्डिंग मशीन, फिल्म निर्माण इत्यादि की चर्चा की है। इन साधनों की विस्तार से चर्चा करने पर ही हम संग्रह की कठिनाइयों और उसकी निराकरण की दिशा में आगे बढ़ सकेंगे।

3.4 संकलन कर्ता के अपेक्षित गुण अथवा विशेषताएँ

1. विषय बोध- संग्रह कर्ता के मनोमस्तिष्क में विषय प्रवेश का एक स्पष्ट खाका होना चाहिए। उसे क्षेत्र विशेष की आवश्यक जानकारी होनी चाहिए ताकि वह उपयुक्त स्थल विशेष तक पहुँचकर लोक साहित्य को जुटा सके।

2. जिज्ञासा- अनुसंधित्सु को जिज्ञासा होना अत्यंत आवश्यक है। जिज्ञासा उसे अभीप्सित लोक साहित्य की विविध विधाओं के प्रति आकर्षित करती है और वह पूर्ण मनोयोग से तथ्यों का संकलन करता चलता है।
3. दूरदृष्टि- संकलन कर्ता को अपने काम में निपुण होने के साथ-साथ दूर दृष्टि रखने वाला भी होना चाहिए। यह दृष्टि ही उसे संकलित तथ्यों को विश्लेषित करने में सहायता प्रदान करती है और स्वयं ही अनावश्यक व कम उपयोगी तत्व व छाँट लेता है।
4. आत्मानुशासन- संकलन कर्ता को लोक साहित्य के मौलिक स्वरूप को प्राप्त करने के लिए कई व्यक्तियों, संस्थानों से सम्पर्क करना पड़ता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसे अपना काम करना होता है। ऐसी स्थिति में झुंझलाहट या क्रोध उसके कार्य में बाधा उपस्थित कर सकता है। उसे यथासंभव अनुशासित रहकर मृदु भाषी व्यक्तित्व का परिचय देना ही होता है।
5. ईमानदारी- संकलन कर्ता को आलस्य या प्रमाद वश स्वयं जानकारी इकट्ठी न कर दूसरे पर आधारित रहना घातक होता है। ऐसी स्थिति में उसके अनुसंधान की दिशा और स्तर पर प्रभाव पड़ सकता है। उसे पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ तथ्यों को संकलित और विश्लेषित करना चाहिए।
6. वस्तु निष्ठता- संकलन कर्ता किसी पूर्वाग्रह से मुक्त होना चाहिए। उसे लोक मानस को समझते हुए उनकी आस्थाओं, विश्वासों और मान्यताओं का सम्मान करना चाहिए और बिना किसी दुराग्रह के उनकी कृतियों को यथा तथ्य स्वीकार कर लेना चाहिए।
7. निर्भीकता- अनुसंधित्सु को निर्भीक होना चाहिए और किसी भी दुर्गम भौगोलिक अथवा तात्कालिक परिस्थिति में आत्मिक संतुलन का परिचय देना चाहिए।
8. धैर्यवान एवं भ्रमणशील- अनुसंधित्सुको कई बार ऐसे व्यक्तियों या स्थितियों का सामना करना पड़ता है जो दुराग्रह से ग्रस्त होते हैं। ऐसी स्थिति में उसे धैर्य, विवेक और सहनशीलता का परिचय देना होता है। अन्यथा वह अपने कार्य में सफल नहीं हो पायेगा। उसे अपने अनुसंधान के लिए अनेक स्थलों की खाक छाननी पड़ सकती है। इसलिए उसे भ्रमण प्रिय होना भी जरूरी है।
9. समयनिष्ठ- अनुसंधान कर्ता को समय का पाबंद होना चाहिए। लोक गीत, लोक कथा अथवा लोक गाथा को प्राप्त करने के लिए उन्हें जिस व्यक्ति से मिलना है उसके द्वारा निर्धारित समय पर पहुँचने पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। प्रभावित व्यक्ति उसे पूरी सहायता देने हेतु तत्पर हो सकता है। समयबद्ध होना यदि अनुसंधित्सु के व्यवहार का अंग बन जाये तो वह अपना कार्य निर्धारित समय सीमा पर पूरा कर सकता है।
10. व्यवहार कुशल- व्यवहार कुशलता अन्यवेषक के लिए अनिवार्य है। विनम्र और वाकपटु व्यक्ति अजनबी स्थान और व्यक्तियों के मध्य भी घुलमिल जाता है और अपने लिए

उपादेय सामग्री ले लेता है। उसकी व्यवहार कुशलता ही सामने वाले के मन पर किसी प्रकार की चोट पहुँचाये बिना मन्तव्य को पूरा कर जाती है।

11. परिश्रमी और संघर्षशील- परिश्रमी और संघर्षशील व्यक्ति ही जोखिम उठा सकता है और अध्ययनोपयोगी सामग्री को इकट्ठा कर सकता है। गढ़वाल और कुमाऊँ का अधिकांश भूभाग बीहड़ पहाड़ियों में है जहाँ आवागमन के साधन तक उपलब्ध नहीं हैं। यहाँ पहुँचना एक टेठी खीर है। केवल संघर्षशील व्यक्ति ही ऐसे स्थानों में जाकर लोक साहित्य की सामग्री उपलब्ध कर सकते हैं।

12. अध्यवसायी- एक सफल अन्वेषण कर्ता को अध्यवसायी होना चाहिए। यही गुण उसे स्थान विशेष के इतिहास, भूगोल, धर्म, दर्शन, संस्कृति को समझने में सहायक सिद्ध होता है।

13. आधुनिक तकनीकी का जानकार- आज विज्ञान का युग है। अनेक संचार माध्यमों ने लोक साहित्य की सामग्री सुलभ करने के अनेक साधन उपलब्ध कराये हैं। अनुसंधित्सु को फोटोग्राफी, वीडियोग्राफी, टंकण और इंटरनेट की जानकारी आवश्यक है। ध्वनियों को यथावत् संरक्षित करने के लिए ऑडियो विजुअल संसाधनों के प्रयोग से बहुत सहायता मिलती है। रिकॉर्ड की गई सामग्री को व्यक्ति बाद में भी बार-बार सुनकर उसे सही-सही लिपिबद्ध कर सकता है।

बोध प्रश्न:-

प्रश्न 3. लोक साहित्य संरक्षण कर्ता में कौन-कौन से गुण होने चाहिए?

.....
.....

प्रश्न 4. संग्रह कर्ता को आधुनिक कौन सी तकनीक का जानकार होना चाहिए?

.....
.....

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं कुछ गलत उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

ग. संकलन कर्ता किसी पूर्वाग्रह से मुक्त नहीं होना चाहिए। ()

घ. एक सफल अन्वेषण कर्ता को अध्यवसायी होना चाहिए। ()

3.4.1 लोक साहित्य संग्रह की समस्याओं के समाधान

लोक साहित्य संग्रह कर्ता की समस्या के लिए कुछ समाधान निम्नवत् हैं -

1. क्षेत्र विशेष की परम्पराओं का ज्ञान- इस कार्य को करने वाले के पास लोक क्षेत्र की परम्पराओं का पूर्व ज्ञान आपेक्षित है। यह आवश्यक है कि उसे यहाँ की भाषा पर अच्छा अधिकार हो। उसके अन्दर समाज विशेष से तादात्म्य स्थापित करने की अनूठी क्षमता होनी चाहिए। इसलिए यहाँ की आस्था, विश्वास, खान-पान, रीति-रिवाज का जानना अनुसंधित्सु के लिए अनिवार्य है। यही कारण है कि इस अंचल विशेष का अनिवासी इस कार्य को करने में बेहद कठिनाई महसूस करता है।
2. क्षेत्रीय भाषा का ज्ञान- अनुसंधित्सु इतिहास, समाज और पूर्व परम्परा का ज्ञान तो होना ही चाहिए, साथ ही साथ उसे बहुभाषाविद् और लोक बोलियों का जानकार भी होना चाहिए।
3. तादात्म्यीकरण का गुण- अनुसंधित्सु को व्यवहारिक और समाज में घुल-मिल जाने वाला होना चाहिए, क्योंकि इसके अभाव में वह समाज के अलग-अलग वर्गों से लोक गीतों के विविध प्रकार को ग्रहण करने में असमर्थ रहेगा। यह तो सर्वविधित है कि लोक साहित्य सम्बन्धी सामग्री समाज के विभिन्न वर्गों के पास होती है। कुछ गाथाएँ और गीत समाज की अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों के पास हैं तो कुछ घरेलू, अपढ़ महिलाओं के कंठ में सुरक्षित हैं। अनुसंधित्सु के पास वह व्यवहारिक कौशल होना चाहिए ताकि वह इन सभी में असानी से घुल-मिल जाए और लोक साहित्य संग्रह कर सके। डा. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार “लोक साहित्य के प्रेमी के लिए यह आवश्यक है कि जिस देश या प्रदेश को वह अपने कार्य का क्षेत्र बनाए वहाँ की जनता से निकटतम सम्बन्ध स्थापित करे। अपने का महान् समझना अथवा जिन लोगों के बीच कार्य करना है, उनको सभ्य या शिक्षित बनाने की भावना घातक सिद्ध होती है। इसलिए यह आवश्यक है कि संग्रही अपने वैभव तथा सुन्दर एवं बहुमूल्य वेश-भूषा का प्रदर्शन उनके सामने न करे।”² सोफिया बर्न के अनुसार “सुष्ठु तथा सुन्दर व्यवहार, सज्जनतापूर्ण बर्ताव और स्थानीय शिष्टाचार के नियमों का पालन करना अनिवार्य है।”³
4. संग्रहकर्ता को स्थानीय जनता के प्रति सहानुभूति पूर्वक व्यवहार करना चाहिए। स्थानीय विश्वासों, प्रथाओं तथा अंधपरम्पराओं के लिए सम्मान प्रदर्शित करना भी जरूरी है अन्यथा वे लोग आत्मीयता की भावना नहीं रखेंगे। डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने अपना तर्क कुछ इस प्रकार रखा है- “यदि हम उनकी प्रथाओं का आदन न करेंगे तो वे लोग आत्मीयता की भावना नहीं रखेंगे। उदाहरण के लिए देहरादून जिले के जौनसार-भावर क्षेत्र में बहुपति प्रथा आज भी प्रचलित है। यदि किसी कुटुम्ब में पाँच भाई हैं तो उन सब की एक ही पत्नी होगी, जो पाँ को अपना पति समझेगी। शास्त्रों ने बहुपतित्व-प्रथा को गर्हित बतलाया है। यदि संग्रहकर्ता अपने कार्य के उद्देश्य से इस प्रदेश में जाय और वहाँ के लोगों से शास्त्र-विरुद्ध इस प्रथा की निन्दा करे तो उसका मिशन कदापि सफल नहीं हो सकता है। इस बात को गाँठ में बाँध लेना चाहिए कि जंगली तथा असभ्य जातियों के विश्वास और प्रथाएँ हमें कितनी ही अद्भुत तथा निन्दित क्यों न मालूम हों, परंतु

स्थानीय निवासियों की दृष्टि में वे तथ्यपूर्ण और तर्कपूर्ण है। अतः आवश्यकता इस बात कि है कि उनके दृष्टिकोण से ही उनकी प्रथाओं को समझने का प्रयास किया जाये।”⁴

4. अनुसंधित्सु की दृष्टि निष्पक्ष व वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए। कभी-कभी लोक गीतों या लोक कथाओं के अनेक प्रारूप प्राप्त होते हैं। प्राचीन हस्तलिखित पोथियों और ग्रंथों में क्षेपक भी होते हैं। इसमें संग्रहकर्ता की वस्तुनिष्ठ दृष्टि प्रमाणिकता का अनुमान कर सकती हैं। कहीं-कहीं लोक साहित्य किसी परिवार की अमूल्य धरोहर के रूप में भी संरक्षित हो सकता है। ऐसी स्थिति में अनुसंधित्सु के पास उसकी छायाप्रति प्राप्त करने की सुविधा भी होनी चाहिए।

5. संग्रहकर्ता जिस जगह से सामग्री एकत्र करता है उस क्षेत्र और व्यक्ति विशेष के विषय में भी जानकारी रखना आवश्यक है क्योंकि सामग्री की यथार्थता, भाषिक ज्ञान और ऐतिहासिकता की जाँच-पड़ताल बाद में की जा सकती है।

6. अधिकांश लोक साहित्य मौखिक या श्रुत परम्परा में ही जीवित रहता है। ऐसे लोक साहित्य का लिप्यंकन अत्यंत कठिन कार्य है, क्योंकि जैसे सुनें ठीक वैसा ही लिखे जाने में बेहद कठिनाई है। इसलिए जो उस क्षेत्र की बोली को जानता हो या उस क्षेत्र विशेष की बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन करने में समर्थ हो, वही शुद्ध रूप से लिप्यंकन कर सकता है। कभी-कभी व्याकरणिक रूप से शुद्ध करने की प्रवृत्ति उस साहित्य के मूल रूप को भी बाधित करती है। अधिकांशतः क्षेत्रीय बोलियों के शब्द उनका ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत उच्चारण विशिष्ट स्थितियों और व्यापारों का बोधक होता है। इसकी जानकारी के अभाव में भी लोक साहित्य का संकलन भ्रामक और त्रुटिपूर्ण हो जाता है। इसलिए यह अवधान योग्य है कि लोक साहित्य को जैसा कहा या जैसा सुना जाता है उसे वैसे ही संकलित करना चाहिए।

7. उच्चारण विशेष के आरोह-अवरोह को टेपरिकॉर्डर की सहायता से यथावत संरक्षित किया जा सकता है तथा हस्तलिखित रूपों को फोटो कॉपी द्वारा संरक्षित किया जा सकता है। संग्रहकर्ता को थोड़ा बहुत फोटोग्राफी का ज्ञान भी होना चाहिए, ताकि वस्तु विशेष को फोटोग्राफी द्वारा समझाया जा सके।

8. गढ़वाल और कुमाउँ में लोक नाट्य पांडव नृत्य का अपना एक विशेष महत्त्व है। इन गाथाओं का केवल लिखित संग्रह उपादेय नहीं है। यह एक अभिनय परम्परा है। जिसमें औजी ढोल, नगाड़े और विविध वाद्य बजाकर करुण, वीर और श्रृंगार रस से परिपूर्ण गाथाएँ गाते हैं। पात्र के बदलते ही वाद्य यंत्रों के स्वर भी बदल जाते हैं और कभी-कभी सामूहिक नृत्य भी होता है। यह समग्र अनुभव केवल लिखित प्रत्यंकन से अभिव्यक्त नहीं हो सकता। लोक चित्त की सामूहिकता और उल्लास का मूर्त रूप प्राप्त करने के लिए इनकी वीडियो ग्राफी करनी चाहिए।

9. लोक गीतों की अपनी विशिष्ट लय और धुन होती है। कोई भी लोक गीत अपने विशिष्ट अवसर पर विशिष्ट धुन और लय के साथ गाया जाता है। इसलिए इनकी स्वर लिपि का निर्माण कर इनके सौंदर्य को संरक्षित करना भी लोक साहित्य के संग्रहकर्ता का कर्तव्य बन जाता है।

10. ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियाँ पर्दा करती हैं और वे किसी अनजान व्यक्ति के सामने आकर गा नहीं सकतीं या परम्परा से प्राप्त कथाओं को बाँट नहीं पाती। ऐसे गीतों को एकत्रित करना अत्यंत कठिन हो जाता है। साथ ही उत्तराखण्ड में कुछ ऐसे गीत हैं जो विशेष समय में ही गाये जाते हैं इन्हें अतिरिक्त समय में गाना अमंगलकारी माना जाता है। जैसे 'जागर गीत' विशेष अवसरों पर ही सुनायी पड़ते हैं। इसीप्रकार मांगल गीत, चौमासे में गाये जाने वाले बाजूबंद विशेष मौको और मौसम में गाये जाते हैं। इन गीतों को संकलन करते समय अनुसंधित्सु को चाहिए की वह प्रत्येक मौसम और अवसर विशेष पर जाकर इनका संग्रह करें।

11. सोफिया बर्न मानती हैं कि लोक साहित्य के लिए विशिष्ट अनुसंधान चार्तुय होना चाहिए। कुछ प्रथाएँ केवल पुरुष पालन करते हैं और कुछ विधि विधान स्त्रियों द्वारा सम्पादित होता है। यही नहीं कुछ परम्पराएँ विशिष्ट कुलों की होती हैं। इन्हें उन्हीं से सम्पर्क साध करके जाना जा सकता है। इस विश्लेषण की क्षमता अनुसंधित्सु में अनिवार्य है। सोफिया का मानना है-“युवती स्त्रियाँ प्रेम-गीत, टोटका, शकुन शास्त्र तथा भूत-दूत के विषय में प्रमाणभूत है। बूढ़ी स्त्रियाँ शिशु-गीत, लोक-कथा तथा जन्म, मृत्यु और बीमारी से सम्बन्धित विधि-विधानों की अधिक जानकारी रखती हैं। संग्रही को पशु पक्षियों के विषय में किसी शिकारी से बातचीत करनी चाहिए, लकड़ीहारे से वृक्षों के विषय में और गृहणी से रसोई बनाने और कपड़ों को साफ करने के सम्बन्ध में पूछ-ताछ करनी चाहिए।”⁵

12. तथ्यों को जाँच परख कर ही स्वीकार करना चाहिए। किसी वस्तु विशेष के अभाव में साक्षीभूत प्रमाणों को लिपिबद्ध कर लेना चाहिए। किसी तथ्य को केवल जानकारी के अभाव में अस्वीकृति नहीं देनी चाहिए।

13. उत्तराखण्ड के अधिकांश प्रदेश बीहड़, दुर्गम स्थानों पर हैं अतः अनुसंधित्सु को पर्याप्त साहस, धैर्य और जीवट का परिचय देना होगा क्योंकि अधिकांश प्रदेशों में यातायात की सुविधा भी नहीं है।

14. यह अत्यंत आवश्यक है कि संग्रहकर्ता को स्थानीय भाषा के शब्दों में ही लोक साहित्य का संग्रह करना चाहिए। लोक गीत और लोक कथाओं के संग्रह में यह अत्यंत वांछनीय है। यही नहीं स्थल विशेष की प्रथाओं और रीति-रिवाजों को लिपिबद्ध करते समय स्थानीय परिभाषिक शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिए। यह भी संभव है कि उनके पर्यायवाची या समानार्थी शब्द हिन्दी में उपलब्ध ही न हो।

15. यह भी संभव है कि एक ही लोक गीत या लोक गाथा के विभिन्न पाठ उपलब्ध हों। संग्रहकर्ता को उनके अलग-अलग रूपों का संग्रह करना वांछनीय है। कोई भी लोक गाथा या गीत राज्यों या प्रांतों में यत्किंचित परिवर्तन के साथ उपलब्ध हो सकती है। उदाहरण के लिए राजूला मालूशाही के कुमाऊँ और गढ़वाल प्रांत में अनेक पाठ उपलब्ध हैं। इसी प्रकार अनेक लोक गाथाएँ कुमाऊँ और गढ़वाल में स्थानीय पुट लेकर थोड़ी बहुत परिवर्तित हुई हैं। इसी प्रकार डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने 'आल्हा' की बुन्देलखंडी, कन्नौजी और भोजपुरी अनेक पाठों का उल्लेख किया है। राजा गोपी चंद और भरथरी की लोक गाथा भी समस्त उत्तरी भारत में अनेक पाठों में उपलब्ध है। ढोला मारू की प्रेम कथा भी राजस्थान से लेकर भोजपुरी तक विभिन्न गायकों द्वारा स्थानीय परिवर्तन के साथ गायी जाती है। डा. चाइल्ड ने भी स्कॉटिश लोक गीतों को अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'इंग्लिश एण्ड स्कॉटिश पोपुलर बैलेड्स' में विभिन्न पाठों के साथ उपलब्ध कराया है। पं. रामनरेश त्रिपाठी ने भी अपनी पुस्तक 'ग्राम गीत' में 'भगवती देवी' शीर्षक गीत को तीन चार पाठों में उपलब्ध कराया है।

16. आज आधुनिक पीढ़ी अपनी लोक परम्पराओं, लोक संस्कृति और साहित्य के प्रति उदासीन होती जा रही है। वे लोग इसे पिछड़ेपन का चिन्ह मानने लगे हैं इसलिए इनके प्रति अभिरूचि जगाना और विलुप्त होते लोक साहित्य को बचाना हमारा पहला कर्तव्य बन जाता है।

प्रश्न

नीचे गए कथनों में से कुछ सही हैं कुछ गलत उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

ड. अधिकांश लोक साहित्य मौखिक या श्रुत परम्परा में ही जीवित रहता है। ()

च. अनुसंधित्सु की दृष्टि निष्पक्ष व वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए। ()

3.5 सारांश

सारांशतः लोक साहित्य के संरक्षण की समस्या व समाधान के विषय में अवगत होते हुए पग-पग पर प्राप्त समस्याओं पर विचार किया गया है। लोक गीतों के संग्रह व संरक्षण करते समय संग्रहकर्ता को लोक गायकों का अभाव, पर्दे की प्रथा, पुनरावृत्ति में असमर्थता, विशेष समय पर ही गायन का क्रम, ग्रामीणों की संकोची मनोवृत्ति, पहाड़ के दुर्गम प्रदेशों में यातायात के साधनों के अभाव का सामना करना पड़ता है। एक लगनशील अनुसंधित्सु को अपूर्व धैर्य का परिचय देना पड़ता है। एक अच्छे संकलनकर्ता में विषय बोध, जिज्ञासा, दूरदृष्टि, आत्मानुशासन, ईमानदारी, वस्तु निष्ठता, निर्भीकता, धैर्यवान एवं भ्रमणशील, समयनिष्ठ, व्यवहार कुशल, परिश्रमी और संघर्षशील, अध्यवसायी सदृश गुणों के साथ-साथ उसे आधुनिक तकनीकी का जानकार भी होना चाहिए।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. लोक साहित्य लोक संस्कृति का प्राण है। यदि लोक जीवन न हो तो लोक मानव का जीवन नीरस और निष्क्रिय होकर यंत्रवत् हो जायेगा। उसकी सहज मुस्कराहट, उत्साह, उल्लास, उमंग समाप्त ही हो जायेंगे। वास्तव में लोक साहित्य से प्रेरणा पाकर ही मानव जीवन सदैव ऊर्जावान बना रहता है इसलिए इस लोक साहित्य को बचाना एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य है।

उत्तर 2. लोक साहित्य का संरक्षण एक अत्यंत दुष्कर कार्य है। इसके पग-पग पर अनेक विभिन्न बाधाएँ प्रस्तुत होती रहती हैं। यह काम पर्याप्त समय और धन की अपेक्षा रखता है। इसका मूलरूप सुदूर पिछड़ी जातियों के मौखिक परम्परा में ही शेष है। आज की विकास की दौड़ ने इन ग्राम्य प्रदेशों में नागरिक सभ्यता का प्रभाव पड़ा है और ये लौकिक साहित्य आज अपना मूल रूप खोते जा रहे हैं। इसके संग्रह और संकलन का कार्य बहुत ही परिश्रम साध्य है। लोक गीतों के संग्रह व संरक्षण करते समय संग्रह कर्ता को लोक गायकों का अभाव, पर्दे की प्रथा, पुनरावृत्ति में असमर्थता, विशेष समय पर ही गायन का क्रम, ग्रामीणों की संकोची मनोवृत्ति, पहाड़ के दुर्गम प्रदेशों में यातायात के साधनों के अभाव का सामना करना पड़ता है।

उत्तर 3. लोक साहित्य संरक्षण कर्ता में विषय बोध, जिज्ञासा, दूरदृष्टि, आत्मानुशासन, ईमानदारी, वस्तु निष्ठता, निर्भीकता, धैर्यवान एवं भ्रमणशील, समयनिष्ठ, व्यवहार कुशल, परिश्रमी और संघर्षशील, अध्यवसायी सदृश गुणों के साथ-साथ उसे आधुनिक तकनीकी का जानकार भी होना चाहिए।

उत्तर 4. संग्रह कर्ता को फोटोग्राफी, वीडियोग्राफी, टंकण और इंटरनेट की जानकारी आवश्यक है। ध्वनियों को यथावत् संरक्षित करने के लिए ऑडियो विजुअल संसाधनों के प्रयोग से बहुत सहायता मिलती है। रिकॉर्ड की गई सामग्री को व्यक्ति बाद में भी बार-बार सुनकर उसे सही-सही लिपिबद्ध कर सकता है।

2. सही गलत उत्तर

क. (ग)

ख. (✓)

ग. (ग)

घ. (✓)

ड. (✓)

च. (√)

3.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लोक साहित्य की भूमिका, लोक साहित्य का संकलन, पृ0 3-8
2. वही, पृ0 3
3. A kindly simple genial manner, much patience in listening and quick perception of and compliance with the local rules of etiquette and courtesy are needful- Sophiya Burn.kउद्धृतांश वही, पृ0 3
4. वही, पृ0 3
5. Young women are the best authority"s on love songs, charms, omens, and simple methods of divination, old women on nursery songs and tales and all the lore connected with birth, death and sickness.k~ One must talk to the hunter about birds and beasts, to the woodcutter about trees and to the housewife about baking and washing.- Sophiya Burn, oxford, page.8

3.8 उपयोगी पाठ सामग्री

1. लोक साहित्य की भूमिका, डा. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन, प्रा0लि0 इलाहाबाद, पंचम संस्करण, 1992।
2. लोक संस्कृति की रूप रेखा, डा. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. लोक साहित्य संरक्षण की समस्याएँ कौन-कौन सी हैं?

प्रश्न 2. लोक साहित्य संग्रह में आने वाली समस्याओं के समाधान को प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 4 कुमाउनी लोकसाहित्य का इतिहास एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 कुमाउनी लोकसाहित्य: तात्पर्य एवं परिभाषा
 - 4.3.1 लोक साहित्य से तात्पर्य
 - 4.3.2 लोकसाहित्य एवं लोकवार्ता
 - 4.3.3 लोकसाहित्य एवं परिनिष्ठित साहित्य
- 4.4 कुमाउनी लोकसाहित्य का इतिहास
 - 4.4.1 कुमाउनी लोकसाहित्य तथा कुमाउनी साहित्य
 - 4.4.2 कुमाउनी लोकसाहित्य का वर्गीकरण
- 4.5. सारांश
- 4.6 पारिभाषिक शब्दावली
- 4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 4.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 4.9 सहायक पाठ्य सामग्री
- 4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

कुमाउनी लोकसाहित्य को समझने के लिए यह जरूरी है कि कुमाऊँ में प्रचलित मौखिक परंपरा किस प्रकार परिनिष्ठित साहित्य में परिवर्तित हुई। कुमाऊँ क्षेत्र में आरंभ से चली आ रही मौखिक परंपरा को जानने समझने के लिए कुमाउनी भाषा का ज्ञान जरूरी है। कुमाऊँ में आरंभिक काल से चली आ रही मौखिक परंपरा ने ही कुमाउनी लिखित साहित्य को जन्म दिया है। इकाई के पूर्वाद्ध में आप कुमाउनी लोकसाहित्य और परिनिष्ठित साहित्य को जान सकेंगे।

इकाई के उत्तराद्ध में कुमाउनी लोकसाहित्य के इतिहास पर दृष्टि डाली गई है, साथ ही कुमाउनी लोकसाहित्य के वर्गीकरण को भी आप इस इकाई के अन्तर्गत आसानी से समझ सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- कुमाउनी लोकसाहित्य के महत्त्व को बता सकेंगे।
- यह समझा सकेंगे कि कुमाउनी लोकसाहित्य तथा कुमाउनी साहित्य में क्या अन्तर है ?
- कुमाउनी लोकसाहित्य की विविध विधाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- मौखिक परंपरा की मौलिकता को बता सकेंगे।
- यह बता सकेंगे कि कुमाउनी साहित्य को आगे बढ़ाने में लोकसाहित्य ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

4.3. कुमाउनी लोकसाहित्य: तात्पर्य एवं परिभाषा

लोकजीवन की विविध क्रियाएं व अनुभूति जब अभिव्यक्ति के धरातल पर आती है तब वह लोकसाहित्य कहलाता है। 'लोक' की अनुभूति की अभिव्यक्ति का दूसरा नाम है लोकसाहित्य। कुमाऊँ क्षेत्र भौगोलिक रूप से पर्वतीय क्षेत्र कहलाता है। यहाँ की प्राचीन परंपराएँ, गीत, संगीत और संस्कृति के मिश्रण से यहाँ के लोकसाहित्य का निर्माण हुआ है। लोकजीवन की भावभूमि पर उगे हुए साहित्य को लोकसाहित्य की संज्ञा दी जाती है। आज लोकसाहित्य के प्रति सहृदय पाठकों एवं विद्वानों का रुझान अधिक दिखाई पड़ता है। इसका मूल कारण यह है कि लोकसाहित्य एक विशाल जनसमुदाय का साहित्य है। लोकसाहित्य में परंपरागत लोकजीवन की धारणाओं, विश्वासों तथा मान्यताओं का पुट होता है। कुमाऊँ क्षेत्र की वाचिक अथवा मौखिक परंपरा का एक दीर्घकालीन इतिहास रहा है। परंपरा से चली आ रही मौखिक अभिव्यक्ति को कुमाउनी लोकसाहित्य कहा जाता है।

4.3.1 लोकसाहित्य से तात्पर्य

लोकसाहित्य शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के “लोकृ” (दर्शन) से हुई है “लोक” तथा “साहित्य” शब्द मिलकर लोकसाहित्य शब्द का निर्माण करते हैं। अमरकोश में लोकसाहित्य के लोक नामक अग्रशब्द के विभिन्न पर्यायवाची शब्द मिलते हैं यथा - भुवन, जगती, जगत्। लोकसाहित्य पूरे जनसमुदाय की अभिव्यक्ति का दर्पण होता है। लोकसाहित्य इतिहास की दीर्घकालीन परंपराओं को समाविष्ट करता है। लोक में घटित हुई या घटित होने वाली घटनाओं के बारे में संवेदना मूलक धारणा विकसित करता है। लोक साहित्य के ममर्ज़ डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लोकसाहित्य के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है- “लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है। लोक कृत्स्न ज्ञान और संपूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूता माता पृथिवी मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।”

डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार, “यह एक अर्धसरल स्वाभाविक मानव समाज है, जिसकी भावनाओं, विचारों, परंपराओं एवं मान्यताओं में वास्तविक कल्याण के तत्व विद्यमान रहते हैं।”

प्रोफेसर देव सिंह पोखरिया ने लोकसाहित्य के संबंध में अपना अभिमत व्यक्त करते हुए लिखा है, “लोक” मानव समाज की वह सामूहिक इकाई है, जो अपने नैसर्गिक और स्वाभाविक रूप में अभिजात्य बंधनों तथा परंपराओं से रहित पांडित्य, चमत्कार तथा शास्त्रीयता से दूर स्वतंत्र एवं पृथक जीवन का प्रचेता है और इसी का साहित्य लोकसाहित्य है।

आंग्ल भाषा में लोक को Folk (फोक) तथा साहित्य को Literature कहा जाता है। लोकसाहित्य पूर्णतः लोकमानस की उपज है। लोकसाहित्य को लिपिबद्ध अभिव्यक्ति ही नहीं माना जाता, बल्कि यह वास्तविक रूप में वाचिक अथवा भाषागत अभिव्यक्ति के रूप में समाज के बीच आता है। लोकसाहित्य में प्राचीन काल के विविध आख्यान, जीवन दर्शन के तत्व तथा सभ्यता एवं संस्कृति के कई रूप निहित होते हैं। मानव व्यवहार के कौशल को मौलिकता के साथ लोकसाहित्य ही प्रकट कर सकता है।

डॉ. रघुवंश के शब्दों में – “लोक की अभिव्यक्ति को साहित्य कहते के साथ ही यह मान लिया गया है कि लोकगीत तथा गाथाओं आदि लोक काव्य के रूप हैं। साहित्य जीवन का सृजन, पुनः जीने की प्रक्रिया है। लोकाभिव्यक्ति के क्षणों में भी समाज के बीच व्यक्ति अपनी सजगता में प्रमुखतः जीवन का अनुभव करता है।”

डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय ने लोकसाहित्य के सांस्कृतिक महत्त्व को प्रकट करते हुए कहा है कि लोक संस्कृति शिष्ट संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों तथा क्रियाकलापों के पूर्ण परिचय के लिए दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहता है।”

डॉ. गणेशदत्त सारस्वत लिखते हैं, 'वाणी के द्वारा प्रकृत रूप में लोकमानस की सरल, निश्चल एवं अकृत्रिम अभिव्यक्ति ही लोकसाहित्य है। इसमें जनजीवन का समग्र उल्लास उच्छ्वास, हर्ष-विषाद, आशा आकांक्षा, आवेग उद्वेग, सुख दुःख तथा हास रुदन का समावेश रहता है।'

इन परिभाषाओं के आलोक में लोकसाहित्य की विशेषताओं को इस प्रकार निर्धारित किया जाता है-

1. लोकसाहित्य व्यक्तिगत सत्ता से ऊपर उठकर समष्टिगत सत्ता का प्रतिनिधित्व करता है।
2. इसमें वाचिक अभिव्यक्ति प्रधान होती है।
3. लोकसाहित्य प्रकृतिपरक होता है इसमें लोक जीवन की शीतल छांव महसूस की जा सकती है।
4. लोकसाहित्य की कतिपय विधाओं के निर्माता अज्ञात रहते हैं।
5. इसमें मौलिकता तथा सजकता होती है।
6. यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्वच्छंद रूप से हस्तान्तरित होती रहती है।
4. लोक की सत्यानुभूति तथा पैराणिक आख्यान स्पष्ट दिखाई देते हैं।

अतः कहा जा सकता है कि लोकसाहित्य लोक जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन करता है। इसमें अर्थवत्ता के साथ साथ रसज्ञता भी होती है।

4.3.2 लोक साहित्य और लोकवार्ता

लोकवार्ता शब्द अंग्रेजी के फोक(Folk) तथा लोर(Lore) के मेल से बना है। फोकलोर शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम इंग्लैण्ड के पुरातत्त्व विज्ञानी विलियम जॉन टामस ने लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति के लिए किया। बाद में डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसे हिन्दी में 'लोकवार्ता' नाम से पारिभाषित किया। उन्ही के शब्दों में - 'लोकवार्ता एक जीवित शास्त्र है। उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है, लोक में बसने वाला जन ,जन की भूमि और मौलिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति, इन तीनों क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है और लोकवार्ता का सम्बन्ध इन्ही के साथ है। दरअसल लोकवार्ता समाज के निम्न वर्गों के वैचारिक क्रिया व्यापारों को पारिभाषित करती है। पश्चिमी देशों में निवास कर रही आदिवासी जन समुदायों के भाषा शास्त्रीय अध्ययन तथा लोक मनोवैज्ञानिक अध्ययन के फलस्वरूप फोकलोर की विधा विकसित हुई। हिन्दी में कई विद्वानों द्वारा लोकवार्ता शब्द का प्रयोग किया गया है। लोकसाहित्य के कुशल अध्येता डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार, 'लोकवार्ता लोकमानस एवं

लोकतत्व का गहन, मनोवैज्ञानिक एवं मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन है। सुनीतिकुमार चटर्जी ने लोकवार्ता को 'लोकयान' माना है। हजारी प्रसाद द्विवेदी इसे 'लोकसंस्कृति' मानते हैं अन्य विद्वानों ने इसे लोकविज्ञान, लोकप्रतिभा, लोकप्रवाह, लोकज्ञान, लोकशास्त्र तथा लोकसंग्रह आदि के रूप में ग्रहण किया है।

लोक साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान प्रोफेसर डी.एस.पोखरिया ने अपना अभिमत प्रस्तुत करते हुए कहा है, 'लोकसाहित्य लोकवार्ता का एक अंग है, किन्तु अंग होते हुए भी वह एक स्वतंत्र और पृथक विद्या है। लोकवार्ता का क्षेत्र वृहत् और व्यापक है। लोकवार्ता में लोक परम्पराओं प्रथाओं और लोकविश्वासों लोकसाहित्यों नृत्य समाजशास्त्र भाषाशास्त्र इतिहास तथा पुरातत्व आदि सबका अध्ययन समाविष्ट है। यह संपूर्ण लोकसंस्कृति का व्यापक अध्ययन करने वाला गतिशील विज्ञान है। यहाँ हमें इस बात को मानना पड़ेगा कि लोक में उत्पन्न हुई विधा लोकविधा तो कही जा सकती हैं। अर्थात् उसे लोकसाहित्य तो आसानी से कहा जा सकता है, किन्तु जो विधा परिमार्जित होकर मनोविज्ञान की गूढ़ संकल्पनाओं का बोध कराती हुई आदिमजातीय तथ्यों से परिचित कराती है। उसे लोकवार्ता कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। विस्तृत क्षेत्र में आप लोकवार्ताके प्रभाव को देखेंगे तथा उस वार्ता के जरिए साहित्यसम्मत उद्देश्यों के वैज्ञानिक प्रभावों का ज्ञान भी आसानी से प्राप्त कर सकेंगे।

लोकसाहित्य जहाँ केवल अनुभूति की साहित्यिक विधाओं को प्रकट करता है, वहीं लोकवार्ता समष्टिगत ऐतिहासिक तथ्यों, पुरातात्विक मान्यताओं एवं भाषाशास्त्र के लक्षणों को भी रूपायित करती है। इससे हमें इन दोनों को समझने में आसानी हो जाती है।

4.3.3 लोकसाहित्य और परिनिष्ठत साहित्य

आप साहित्य के विषय में पढ़ते आए हैं। यहाँ हम लोकजीवन के साहित्य के विविध रूपों को समझने का प्रयास करेंगे। परिनिष्ठत साहित्य को लिखित साहित्य भी कहा जाता है। जो साहित्य सुदीर्घ साहित्य परंपरा का निर्वहन करता हुआ लोक की भावभूमि से उठकर मानकों, परिष्कार की सीढ़ियाँ चढ़ने लगता है, उसे हम अभिजात या परिनिष्ठत साहित्य के नाम से जानते हैं। अभिजात साहित्य का प्रदुर्भाव लोक साहित्य से हुआ माना जाता है। उदाहरण के लिए कुमाऊँ क्षेत्र की जागर परंपरा को ही ले लें। जागर एक कुमाउनी लोक नृत्य की गायन शैली मिश्रित विधा है। जागर लगाने का क्रम इतिहास काल में प्रारंभ से माना जाता रहा है। अशिक्षित जागर गायक वर्षों से अपने दन्तवेद से इस विधा को संजोए हुए है। कतिपय स्थितियों में हम पाते हैं कि जागर के कुछ नमूने विचित्र भाषा में लिखे गए प्राचीन भोजपत्रों या अन्य पत्रों में मिलते हैं, किन्तु जागर गाने वाला जगरिया इस लिखित पत्रों को देखे बिना सुन्दर लयात्मक अंदाज में जागर लगाता है। इससे स्पष्ट होता है कि वर्षों से चली आ रही मौखिक परंपरा स्वयं में पुष्ट है। उसमें अभिव्यक्ति की ठोस क्षमता है। किन्तु कालान्तर में विकास के साथ साथ जागर जैसी अन्य

कई गायन शैलीपूर्ण विधाएँ टेपरिकार्डर आदि के माध्यम से ध्वन्यालेखित होती गईं उसका अभिजात या लिखित साहित्य में परिवर्तन होता गया।

परिनिष्ठित साहित्य के विषय में देव सिंह पोखरिया लिखते हैं, ‘लोकसाहित्य परंपरा मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी चलती आई। साहित्य लिखित और परिष्कृत रूप ‘अभिजात’ नाम से अभिहित किया जाता रहा। लोक की यह परंपरा ही विकास और परिवर्द्धन के विविध सोपानों को पार करती हुई लोक कवि के कंठ में पीयूषवर्षी वीणा के समान अमृत वर्षा करती रही। वेदों का ‘श्रुति’ नाम भी इस बात का परिचायक है कि वैदिक परंपरा भी अपने प्रारंभिक रूप में मौखिक रूप में प्रचलित थी। इसलिए वैदिक साहित्य को लोक जीवन की आदि सम्पदा कहा जाता सकता है। बाद में लक्षणकारों द्वारा लैकिक साहित्य को शास्त्रीय रूप प्रदान किया गया। निरंतर प्रगतिशील परिवर्तन शील सभ्यता और संस्कृति लोकमानस के परिवर्तन की स्थितियों के साथ ही साहित्य के स्वरूप को भी परिवर्तित करती रही। समय के साथ ही उसमें गति, युगबोध और मूल्यों की नवीनता ने प्रकृष्ट रूप से स्थान प्राप्त किया। इसी कारण लोककवि वैदिक परंपरा से भी आगे बढ़ आया और लोक जीवन के साथ ही उसके अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष भी परिवर्तित होकर नए आयामों का रेखांकन करने लगे।’

उपर्युक्त अभिमतों तथा परिभाषाओं के आलोक में आप लोकसाहित्य को मौलिक सहज तथा परंपरा से चली आ रही लोक सम्मत विधा मानेंगे तथा लोकसाहित्य का सुव्यवस्थित , अभिजात तथा लिखित स्वरूप को परिनिष्ठित साहित्य के रूप में समझ सकेंगे।

बोध प्रश्न

(क) सही विकल्प का चयन कीजिए

1. परिनिष्ठित साहित्य को क्या कहा जाता है ?

क. लोकसाहित्य

ख. ग्राम साहित्य

ग. अभिजात साहित्य

घ. आदिम साहित्य

2. लोकसाहित्य की परिभाषा दीजिए तथा अपने शब्दों में उसकी संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

3. लोकवार्ता से आप क्या समझते हैं?

4.4 कुमाउनी लोकसाहित्य का इतिहास

कुमाऊँ में आरंभिक काल से प्रचलित मौखिक साहित्य को लोकसाहित्य कहा जाता है। यद्यपि कुमाउनी में हमें दो प्रकार का साहित्य मिलता है, किन्तु मौखिक परंपरित साहित्य के निर्माता रचयिता अज्ञात होने के कारण लोगों के दन्तवेद या टेपरिकार्डर आदि के माध्यम से लोकसाहित्य यत्र तत्र किसी रूप में उपलब्ध हो जाता है। कुमाउनी लोकसाहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालने से हमें पता चलेगा कि जिन रचनाकारों के कालक्रम का हमें पता है या जिनके द्वारा लिखा गया साहित्य हमें उपलब्ध है, हम उसे इतिहास में जोड़ते हुए लिखित या मौखिक का भेद किए बिना अध्ययन की समग्र सामग्री के रूप में स्वीकार करेंगे।

कुमाउनी भाषा में कविता, कहानी, निबंध तथा नाटक तथा अन्य विधाओं की रचनाओं का उल्लेख हुआ है। इतिहास काल में समय समय पर विभिन्न शासनों का प्रभाव यहाँ के साहित्य पर भी पड़ा। इसीलिए संस्कृत, बंगला, उर्दू आदि भाषाओं का प्रभाव भी कुमाउनी लोकसाहित्य में देखा जा सकता है।

प्रो. शेर सिंहबिष्ट के अनुसार, “ कुमाउनी में लिखित शिष्ट साहित्य की परंपरा अधिक प्राचीन नहीं है। यद्यपि लिखित रूप में कुमाउनी भाषा का प्रयोग ग्यारहवीं सदी से उपलब्ध ताम्रपत्रों, सनदों एवं सरकारी अभिलेखों में देखने को मिलता है, परन्तु साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में उसका लिखित रूप गुमानी (1790-1846 ई.) से प्रारंभ होता है। गुमानी ने जिस तरह की परिष्कृत कुमाउनी का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है, उससे लगता है कि उससे पूर्व भी कुमाउनी में साहित्य लिखा जाता रहा होगा। लेकिन उसकी कोई प्रामाणिक जानकारी अभी तक सामने नहीं आ पाई है।

कुमाउनी के लिखित साहित्य को प्रकाश में लाने का श्रेय तत्कालीन स्थानीय अखबारों को जाता है जिसमें ‘अल्मोड़ा अखबार’, ‘कुमाऊँ कुमुद’, ‘शक्ति’, ‘अचल’ आदि प्रमुख हैं। डॉ. विष्ट ने कुमाउनी के लिखित साहित्य को कालक्रमानुसार तीन चरणों में बाटा है-

प्रारंभिक काल (1800 ई. से 1900 ई.)

मध्य काल (1900 ई. से 1950 ई.)

आधुनिक काल (1950ई. से अब तक)

कुमाउनी साहित्य का प्रारंभिक दौर काफी उतार चढ़ावों से भरा था। सन् 1790ई. में चन्द शासक के पतन के फलस्वरूप कुमाऊँ क्षेत्र गोरखा शासन के अधीन हो गया था। इसके उपरांत सन् 1815 में कुमाऊँ अंग्रेजी शासक के कब्जे में आ गया। प्रत्येक शासन काल में तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य का असर उस समय की रचनाओं पर पड़ा। गुमानी पन्त ने

अंग्रेजी शासन के विरुद्ध कविताओं के माध्यम से आवाज उठाई। गुमानी पंत को लिखित कुमाउनी साहित्य का प्रथम कवि माना जाता है। इनका जन्म सन् 1790 में काशीपुर में हुआ। इन्होंने रामनाम, पंचपंचाशिका, राममहिमा वर्णन, गंगाशतक, रामाष्टक जैसी महान कृतियों की रचना की। इनका अवसान सन् 1848 ई. को हुआ। गुमानी के समकालीन कवि कृष्णापाण्डे (सन् 1800-1850 ई.) का जन्म अल्मोड़ा के पाटिया नामक ग्राम में हुआ था। इनकी रचनाओं में भी सामाजिक यथार्थ का चित्रण मिलता है। इनकी फुटकर रचनाओं में 'मुलुक कुमाऊँ' तथा 'कलयुग वर्णन' प्रमुख हैं। सन् 1848 ई. में फल्दाकोट में जन्मे शिवदत्त सती मध्यकालीन कुमाउनी कवि हैं। ये वैद्यक थे। इन्होंने घस्यारी नाटक मित्र विनोद नामक पुस्तकें लिखी।

गौरीदत्त पाण्डे 'गौर्दा' भी मध्यकालीन कुमाउनी कवियों में अपना अलग स्थान रखते हैं। इनका जन्म 1872 ई. को देहरादून में हुआ तथा मृत्यु 1939 ई. को हुई। इनकी रचनाओं की प्रासंगिता के कारण हम इन्हें वर्तमान पाठ्यक्रम में भी पढ़ते हैं। इनकी कविताओं का संकलन 'गौरी गुटका' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अलावा इनकी अन्य महत्वपूर्ण रचनाएँ प्रथम वाटिका तथा छोड़ों गुलामी खिताब है। अंग्रेजी शासक के अत्याचारों के विरुद्ध इन्होंने बड़ा काव्यांदोलन किया था। आधुनिक युग के छायावादी काव्य के आधार स्तंभ सुमित्रानंदन पंत का जन्म अल्मोड़ा जनपद के कौसानी नामक ग्राम में हुआ था। इनकी कुमाउनी में 'बुरुश' नामक कविता प्रकृति का साक्षात् निरूपण करती है। पंत जी का हिन्दी साहित्य जगत में भी बहुत बड़ा नाम है। श्यामाचरण पंत (1901 ई. से 1967) का जन्म रानीखेत में हुआ। इनके द्वारा कई फुटकर रचनाएँ लिखी गईं। कुमाऊँ के जोड़ एवं भगनौल विधा के ये एक अच्छे ज्ञाता थे। 'दातुलै धार' इनकी विख्यात प्रकाशित पुस्तक है।

अल्मोड़ा में सन् 1910 को जन्में चन्द्रलाल चौधरी ने कुमाऊँकी प्रसिद्ध लोक विधा कहावतों पर आधारित पुस्तक 'प्यास' सन् 1950 में लिखी। इनका निधन वर्ष 1966 में हुआ। इनके अलावा मध्यकालीन कुमाउनी कवियों में जीवनचन्द्र जोशी, तारादत्त पाण्डे, जयन्ती पंत, बचीराम, हीराबल्लभ शर्मा, ताराराम आर्य, कुलानन्द भारतीय तथा पीताम्बर पाण्डे का नाम उल्लेखनीय है। सन् 1950 से लेकर वर्तमान समय तक का रचनाकाल आधुनिक काल कहलाता है। स्वतंत्रता के बाद कुमाउनी रचनाकारों की रचनाओं में आए बदलाव को हम आसानी से देख सकते हैं। समय के साथ साथ ठेठ कुमाउनी का रूप मानक भाषा की तरफ बढ़ता दिखाई देता है। युगीन प्रभाव के साथ साथ रचनाओं के अर्थग्रहण शैली में परिवर्तन देखा जा सकता है।

आधुनिक युग के कवियों में सर्वप्रथम चारूचंद पाण्डे का नाम उल्लेखनीय है। इनका जन्म सन् 1923 को हुआ। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'अड.वाल' सन् 1986 में प्रकाशित हुआ। इन्होंने पूर्ववर्ती कवि गौर्दा के काव्य दर्शन पर चर्चित पुस्तक लिखी। लोकसाहित्य के मर्मज्ञ ब्रजेन्द्र लाल साह का जन्म 1928 ई. को अल्मोड़ा में हुआ। रंगमंच से जुड़ाव होने के कारण इनकी रचनाओं को पर्याप्त प्रसिद्धि मिली है। इसी क्रम में नंदकुमार उप्रेती जिनका जन्म सन् 1930 को

पिथौरागढ़ में हुआ, अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। इनकी 'भुलिनिजान आपुण देश', तीन कांड प्रकाशित पुस्तकें हैं। आधुनिक कुमाउनी के लोकप्रिय कवि शेर सिंह विष्ट 'अनपढ़' सन् 1933 में जन्मे थे। गीत एवं नाटक प्रभाग के एक जाने माने हास्य कलाकार के रूप में भी उनका नाम जन जन की जुबान पर आज भी है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- 'मेरि लटि पटि', 'जाँठिक घुडुर', तथा 'फच्चैक (बालम सिंह जनोटी के साथ)। बंशीधर पाठक 'जिज्ञासु' का जन्म 1934 ई. को अल्मोड़ा में हुआ। इनकी सुप्रसिद्ध रचना 'सिसौण' है। हिन्दी साहित्य के जाने माने मूर्धन्य साहित्यकार रमेशचन्द्र साह का जन्म स्थान अल्मोड़ा है। इन्हें 'पद्म श्री' तथा 'व्यास सम्मान' जैसे महानतम अलंकरणों से विभूषित किया जा चुका है। 'उकाव हुलार' इनकी कुमाउनी में प्रतिष्ठित पुस्तक है। श्रीमती देवकी महारा का जन्म सन् 1937 ई. को अल्मोड़ा में हुआ। इनकी पुस्तकों में वेदना तथा विरहानुभूति दिखाई देती है। 'प्रेमाजलि', 'स्वाति', 'नवजागृति' तथा उपन्यास 'सपनों की राधा' इनकी प्रकाशित कृतियाँ हैं। सन् 1939 को बेरीनाग के गढ़तिर नामक ग्राम में जन्मे बहादुर बोरा 'श्रीबंधु' की रचनाएँ विविध पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। इनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता की झलक मिलती है। मथुरादत्त मठपाल कुमाउनी के एक लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार हैं। इनका जन्म सन् 1941 को भिक्यासैण (अल्मोड़ा) में हुआ। ये 'दुदबोलि' कुमाउनी पत्रिका का संपादन वर्षों से करते आ रहे हैं।

इसके अतिरिक्त कुमाउनी साहित्य में अनेक पुरोध रचनाकारों के नाम उल्लेखनीय हैं- यथा गोपाल दत्त भट्ट, भवानीदत्त पंत, दीपाधार, हीरा सिंह राणा, गिरीश तिवारी 'गिर्दा', महेन्द्र मटियानी, दुर्गेश पंत, राजेन्द्र बोरा (अब त्रिभुवन गिरी), जुगल किशोर पेटशाली, बालम सिंह जनोटी, दामोदर जोशी 'देवांशु' डॉ. शेरसिंह विष्ट, डॉ. देवसिंह पोखरिया, जगदीश जोशी, रतन सिंह किरमोलिया, उदय किरौला, दीपक कार्की, हेमन्त विष्ट, श्याम सिंह कुटौला, डॉ. दिवा भट्ट, मोहम्मद अली अजनबी, रमेश पाण्डे राजन, देवकी नंदन काण्डपाल, महेन्द्र सिंह महारा 'मधु' सहित वर्तमान के अन्य लेखक एवं कवि।

4.4.1 कुमाउनी लोकसाहित्य तथा कुमाउनी साहित्य

युग युगों से लोकमानस की स्वच्छंद स्वतंत्र अभिव्यक्ति को लोकसाहित्य की परिधि में रखा जाता है। यहाँ आप 'जो लिखा ना गया हो किन्तु गाया गया' को लोकसाहित्य समझेंगे, लोक की भावभूमि पर मौलिक और स्वाभाविक रूप से जो कुछ उच्चरित होता रहा या वह लोकरंजक गुणों से परिपूर्ण था, जिसे तत्कालीन व अद्यतन समाज ने ज्यों का त्यों ग्रहण किया, को लोकसाहित्य कहना उचित प्रतीत होता है। हालाँकि कालान्तर में यही वाचिक अभिव्यक्ति परिनिष्ठित या लिखित साहित्य के रूप में सर्व समाज के समक्ष आई, किन्तु अपने उद्भव एवं विकास काल से जो कुछ बुजुर्गों के मुख से गाया गया तथा सुना गया उसे लोक का साहित्य या लोकसाहित्य कहा गया। उदाहरण के लिए फूलदेई के त्योहार में बच्चों घर घर जाकर फूल चढ़ाते हुए कहते हैं।-

“फूल देई छम्मा देई
 दैणौ द्वार भर भकार
 त्वी देली सो नमस्कार।”

घुघुतिया त्यार (मकर संक्रान्ति) पर्व पर कुमाऊँ में कौवे बुलाने का प्रचलन है-

“काले कव्वा काले
 घुघुती मावा खा ले
 तु ल्हि जा बड़
 म्यकें दिजा सुनु घड़ा ”

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त परंपरा आरंभिक काल से चली आ रही है। इसका प्रदुर्भाव कैसे हुआ ? ये किसने रचा? इस संबंध में कोई सटीक उत्तर प्राप्त नहीं होता। जो पढ़ना लिखना कभी नहीं जानते थे। वे लोग भी इसे आसानी से कह जाते हैं। लिखित साहित्य के अस्तित्व में आते ही समस्त या कुछ कुछ वाचिक परंपराओं का प्रतिफलन लिखित साहित्य में किया जाने लगा। अतः कहा जा सकता है कि वर्तमान दौर में भी कतिपय लोक सम्मत विधाएँ ऐसी हैं जिन्हें केवल दन्तवेद के द्वारा ही अनुभूत किया जा सकता है। अनुभूति के धरातल पर उर्वर लोकमानस की उपज ही लोकसाहित्य है।

कुमाउनी साहित्य लोकसाहित्य का ही लिखित एवं परिमार्जित रूप है। मध्यकालीन तथा आधुनिक कालीन कुमाउनी लोकसाहित्य की परंपरा का विशुद्ध लिखित रूप कुमाउनी साहित्य के नाम से जाना जाता है। कुमाऊँ क्षेत्र की विविध भाषा बोलियों में कुमाउनी लोकसाहित्य तथा लिखित साहित्य उपलब्ध होता है। डी० एस० पोखरिया ने लिखा है, 'परिनिष्ठत या अभिजात साहित्य को लिखित साहित्य के रूप में कुमाउनी साहित्य के नाम से अभिहित किया जाता है। परिनिष्ठित साहित्य में युगीन परंपराओं को मर्मज्ञ अपने दृष्टिकोण से अभिव्यक्त करता है। इस साहित्य में क्रमिक विकासवादी दृष्टिकोण से रचनाकार ठेठ भाषा का परिमार्जन कर विषयवस्तु को ग्राह्य बनाता है। कुमाउनी लोकसाहित्य के ध्वन्यालेखन तथा मुद्रण आदि से कुमाउनी साहित्य का अस्तित्व बहुत विकसित हुआ है। कुमाउनी साहित्य के परिनिष्ठित स्वरूप पर शोधकार्य करने वाले अनुसंधाताओं को विषयवस्तु को समझने में आसानी हो जाती है। कुमाउनी लिखित साहित्य के द्वारा नवीन भावबोधों एवं कलापक्ष पर आसानी से विवेचना की जा सकती है। कुमाउनी साहित्य में लोकसाहित्य की तरह गेयता को लिखने या अभिव्यक्त करने में कठिनाई जरूर होती है, फिर भी गेय विधाओं को कुमाउनी साहित्य में आसानी से लिखने के लिए हलन्त तथा अन्य स्वर व्यंजनों को यथास्थान अंकित किया जाता है ताकि पाठकवर्ग या विद्यार्थी उसे आसानी से समझ सकें।

4.4.2 कुमाउनी लोकसाहित्य का वर्गीकरण

कुमाउनी लोकसाहित्य को विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने ढंग से वर्गीकृत किया है। प्रो. पोखरिया के अनुसार, 'परिनिष्ठित या अभिजात साहित्य की भाँति देखने व सुनने की योग्यता के आधार पर कुमाउनी लोकसाहित्य के भी दो भेद किये जा सकते हैं- (1) श्रव्य और (2) दृश्य। कुमाउनी लोकसाहित्य की कई विधाओं में श्रव्य और दृश्य के गुण एक साथ पाए जाते हैं कुमाउनी के झोड़ा, चाँचरी, छपेली आदि गीत रूप श्रव्य भी हैं और दृश्य भी। 'लोक जीवन की अभिव्यक्ति को प्रायः गेय शैली में देखा सुना जा सकता है। लयात्मक आधार पर कुमाउनी लोकसाहित्य को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है', (1) पद्य (2) गद्य तथा (3) चम्पू (गद्य पद्यात्मक विधा) पद्य के अन्तर्गत विविध, लोकगीत, गद्य के अन्तर्गत लोककथा, मुहावरे, कहावतें तथा मंत्र साहित्य तथा चम्पू के अन्तर्गत गद्य, पद्य मिश्रित लोकगाथाएँ आती हैं। प्रो. पोखरिया ने कुमाउनी लोकसाहित्य का वर्गीकरण अधोलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया है-

- (1) लोकगीत
- (2) लोकगाथा
- (3) लोककथा
- (4) लोकोक्ति या कहावत
- (5) मुहावरे
- (6) पहेलियाँ
- (7) लोकनाट्य तथा
- (8) प्रकीर्ण लोक साहित्य।

डॉ. कृष्णानंद जोशी ने बटरोही द्वारा पुस्तक 'कुमाउनी संस्कृति' में कुमाऊँ का लोकसाहित्य विषयक वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

- (1) पद्यात्मक (गेय)
 - (अ) धार्मिक गीत
 - (ब) संस्कार गीत
 - (स) ऋतु गीत
 - (द) कृषि गीत

- (इ) उत्सव तथा पर्व संबंधी
 (ई) मेलों के गीत
 (य) परिसंवादात्मक गीत
 (र) न्योली तथा जोड़
 (ल) बालगीत
 (2) गद्य पद्यात्मक (चम्पू काव्य)
 (अ) प्रेम प्रधान काव्य: मालूसाही

(ब) वीरगाथा काव्य: भड़ौ- (सकराम कार्की, अजीत बोरा, रणजीत बोरा, सालदेव, जगदेव पंवार आदि)

- (स) लोक काव्य – रमोला
 (द) ऐतिहासिक गाथाएँ
 (3) गद्य
 (अ) लोक कथाएँ
 (ब) लोकोक्तियाँ
 (स) पहेलियाँ
 (द) लोक प्रचलित जादू टोना

इस प्रकार हम देखते हैं कि यहाँ लोकसाहित्य के ज्ञाताओं ने कुमाउनी लोकसाहित्य को लगभग एक समान रूप से वर्गीकृत किया है। आप दोनों वर्गीकरणों की तुलना से पाएँगे कि मुख्य रूप से गद्य पद्य तथा चम्पू काव्य वर्गीकरण का मुख्य आधार हैं। इस के बाद उप शीर्षकों में गेयता के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। गद्य पद्य तथा चम्पू काव्य के अन्तर्गत उपबिन्दुओं को समझते हुए हम कुमाउनी लोकसाहित्य का विशद वर्गीकरण कर सकेंगे

बोध प्रश्न

- (1) कुमाउनी लोकसाहित्य के वर्गीकरण को संक्षेप में समझाइए
 (2) आधुनिक काल के चार कुमाउनी रचनाकारों के नाम तथा उनकी रचनाओं के नाम लिखिए
 सही विकल्प चुनिए

3 (क) दृश्य श्रव्य लोकगीत है-

- (अ) चाँचरी

- (ब) न्योली
- (स) संस्कार गीत
- (द) जोड़
- (ख) 'भड़ौ' किस प्रकार का काव्य है ?
- (अ) प्रेमप्रधान काव्य
- (ब) लोक काव्य
- (स) वीरगाथा काव्य
- (द) ऐतिहासिक गाथा

4.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

कुमाउनी लोकसाहित्य का अर्थ एवं परिभाषा समझ चुके होंगे।

कुमाउनी लोकसाहित्य और परिनिष्ठित साहित्य के बारे में ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

कुमाउनी के उद्भव एवं विकास की जानकारी प्राप्त कर चुके होंगे।

कुमाउनी लोकसाहित्य तथा लिखित साहित्य के विद्वानों के विचारों से अवगत हो चुके होंगे।

कुमाउनी लोकसाहित्य के वर्गीकरण को समझ गए होंगे।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

परिनिष्ठित - लिखित

अभिजात - सभ्य, सुसंस्कृत

वाचिक - मौखिक

पर्यवसान - निथार या सार

ध्वन्यालेखन - टेपरिकार्ड से सुनकर लिखना

जागर - जागरण, एक कुमाउनी लोकनृत्य

चम्पू - गद्य तथा पद्यात्मक काव्य

पीयूषवर्षी - अमृत बरसाने वाली

गेय - गाने योग्य

परिमार्जन - शुद्ध करना

अन्तर्भाव - आत्मसात या ग्राह्यता का गुण

दन्तवेद - वाणी द्वारा उच्चरित

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.3 के उत्तर

1 (क) अभिजात साहित्य

7.4 के उत्तर

अति लघुउत्तरी प्रश्नों के उत्तर

2

(अ) शेर सिंह विष्ट 'अनपढ़', रचनाएँ 'मेरि लटि पटि', 'जांठिक घुडु.र', 'हसणै बहार'

(ब) गोपालदत्त भट्ट - 'अग्नि आँखर', 'फिर आल फागुण', 'गहरे पानी पैठ', 'आदमी के हाथ'।

(स) देवकी महारा - 'सपनों की राधा', 'नवजागृति', 'स्वाति', 'प्रेमांजलि'।

(द) शेर सिंह विष्ट - 'भारत माता', 'ईजा', उच्चैण।

3 (क) चाँचरी

(ख) वीरगाथा काव्य

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पोखरिया, देव सिंह, लोक संस्कृति के विविध आयाम: मध्य हिमालय के संदर्भ में, प्रथम संस्करण, 1994, पृ -2-7
2. हिन्दुस्तानी, भाग 20 अंक 02 अप्रैल - जून 1959 में 'लोकवार्ता शीर्षक निबंध'
3. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, डॉ. सत्येन्द्र, पृ -3
4. लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डॉ. विद्या चौहान, पृ - 41
5. लोक साहित्य विज्ञान, डॉ. सत्येन्द्र, पृ -4
6. हिन्दी साहित्य कोश, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ - 682
7. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास, भाग - 16 प्रस्तावना, पृ - 14
8. कुमाउनी भाषा और साहित्य का उद्भव एवं विकास डॉ. शेर सिंह विष्ट, पृ -109 -112
9. उत्तरांचल पत्रिका, सं० दीपा जोशी, नई दिल्ली, पृ -32

4.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

- (1) कुमाउनी संस्कृति, सं. बटरोही, रूद्रपुर
- (2) कुमाउनी लोकसाहित्य, डॉ. देवसिंह पोखरिया, डॉ. डी. डी. तिवारी, अल्मोड़ा
- (3) कुमाऊँ की लोकगाथाओं का साहित्यिक व सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय, बरेली
- (4) कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य डॉ. त्रिलोचन पाण्डे, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ
- (5) कुमाऊँ हिमालय: समाज एवं संस्कृति, डॉ. शेरसिंह विष्ट, अल्मोड़ा
- (6) कुमाउनी भाषा, साहित्य और संस्कृति, डॉ. देवसिंह पोखरिया, अल्मोड़ा
- (7) कुमाऊँ का इतिहास, बटरीदत्त पाण्डे, अल्मोड़ा

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

- (1) कुमाउनी लोकसाहित्य का परिचय देते हुए इसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
- (2) कुमाउनी लोकसाहित्य का वर्गीकरण कीजिए तथा इसके गद्य एवं पद्य स्वरूप की विवेचना कीजिए।
- (3) लोकसाहित्य क्या है? कुमाउनी परिनिष्ठित एवं लोकसाहित्य का स्वरूप निर्धारण कीजिए।

इकाई 5 कुमाउनी लोकगीत: इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 कुमाउनी लोकगीतों का इतिहास एवं स्वरूप
 - 5.3.1 कुमाउनी लोकगीत: स्वरूप विवेचन
 - 5.3.2 कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण
- 5.4 कुमाउनी लोकगीतों का भावपक्षीय वैशिष्ट्य
 - 5.4.1 कुमाउनी लोकगीतों की विशेषताएँ
 - 5.4.2. कुमाउनी लोकगीतों का महत्त्व
- 5.5 कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय
- 5.6 सारांश
- 5.7 शब्दावली
- 5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 5.10 सहायक ग्रंथ सूची
- 5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप ने कुमाउनी लोकसाहित्य के इतिहास स्वरूप का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई कुमाउनी लोकसाहित्य की अनूठी विधा लोकगीत पर आधारित है। लोकसाहित्य का पूर्ण ज्ञान रखने वाले व्यक्ति के लिए लोकगीतों को समझना आसान होगा, क्योंकि लोकसाहित्य की एक विधा लोकगीत भी है। लोकगीत आरंभिक काल से लोक की गहन अनुभूति को प्रकट करते रहे हैं। लोकमानस की जमीन से जुड़ी यथार्थता स्वतः लोकगीतों में प्रस्फुटित हुई है। इस इकाई में हम लोकगीतों के दीर्घकालीन इतिहास पर दृष्टि डालेंगे तथा इसके स्वरूप का विवेचन करते हुए इसके महत्त्वपूर्ण पक्षों को समझ सकेंगे। कुमाउनी लोकगीतों के महत्त्व को समझकर उनकी सामाजिक प्रासंगिकता का ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे। कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण से अलग अलग प्रकार के लोकगीतों का परिचय प्राप्त हो सकेगा। इकाई के उत्तरार्ध में कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है, जिसके माध्यम से

हम विविध कुमाउनी लोकगीतों में निहित अनुभूति एवं अभिव्यक्ति विधान सहित स्वरूप को भलि भाँति जान सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- कुमाउनी लोकगीतों का प्रादुर्भाव एवं इतिहास को समझ सकेंगे।
- आप बता पायेंगे कि कुमाउनी लोकगीत आरंभ से लोगो की जुबान पर किस प्रकार अवस्थित रहे हैं।
- कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण से आपको कुमाउनी साहित्य का समग्र बोध हो सकेगा।
- कुमाउनी रचनाकारों के अनुभूत ज्ञान का आपको ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।
- आप जान सकेंगे कि किस तरह लोकगीत हमारे लोकजीवन की अपूर्व वस्तु है।
- कुमाउनी लोकगीतों की गेयता से आप एक गूढ़ अस्तित्व का भान कर सकेंगे।
- इन लोकगीतों के सामाजिक पक्ष से उद्घाटित होने वाली समरस सरल दृष्टि का अनुशीलन कर पाएँगे।

5.3 कुमाउनी लोकगीतों का इतिहास एवं स्वरूप

कुमाऊँ में लोकगीत प्रारंभ से प्रचलित रहे हैं। कुछ लोकगीत युगो से चली आ रही परंपरा को प्रदर्शित करते हैं तथा कालान्तर में परिनिष्ठित साहित्य के विकास के साथ ही लोकगीतों का अभिनव निर्माण किया जाने लगा। लिखित साहित्य के इतिहास में कुमाउनी लोकगीतों के रचयिता ज्ञात हैं। प्रारंभ से चले आ रहे लोकगीत लोकमानस का स्वच्छंद प्रवाह हैं प्रायः इनके निर्माता अज्ञात रहते हैं। आपने जिस इकाई का पूर्व में अध्ययन किया है उसमें कुमाउनी साहित्य के उद्भव एवं विकास के अन्तर्गत ज्ञात रचनाकारों की रचनाओं का परिचय दिया गया है। यही लोकगीतों का इतिहास भी है। उन्हीं विकास के चरणों में लोकगीतों की ऐतिहासिक दृष्टि हमें प्राप्त होती है। कुमाऊँ में लोकगीतों का प्रचलन तो आरंभिक काल से रहा है। लिखित साहित्य के रूप में उपलब्ध लोकगीतों को हम ऐतिहासिक रूप से स्वीकार करेंगे, डॉत्रिलोचन पाण्डे ने कुमाउनी लिखित साहित्य को निम्नलिखित कालक्रमानुसार विभाजित किया है-

(1) 19वीं सदी का साहित्य

(2) 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का साहित्य

(3) 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का साहित्य

हम उपर्युक्त काल विभाजन को लोकगीतों के क्रम में मान सकते हैं क्योंकि उपर्युक्त काल विभाजन में अस्सी फीसदी लोकगीतों वाली सामग्री हमें प्राप्त होती है। गुमानी कवि को सबसे प्राचीनतम कवि माना जाता है। इनका पुराना नाम लोकरत्न पंत था, इन्होंने लगभग 15 ग्रंथ लिखे जिनमें 'रामनाम पंच पंचाशिका', गंगाशतक, कृष्णाष्टक, नीतिशतक प्रमुख हैं, इनका काल सन् 1790 से 1846 ई. तक माना जाता है। बैर और भगनौल विधा के कुशल प्रणेता कृष्णा पाण्डे (सन् 1800-1850) का जन्म अल्मोड़ा के पाटिया नामक ग्राम में हुआ था, व्यवस्था की बदहाली का वर्णन उनकी कविताओं का मुख्य विषय था। इनकी प्रमुख काव्य रचना 'कृष्णा पाण्डे को कलियुग' है।

नयनसुख पाण्डे अल्मोड़ा के पिलखा नामक ग्राम में जन्मे थे। पहाड़ी स्त्री की मनोदशा पर इन्होंने कई कविताएं लिखीं। 19वीं शताब्दी के अवसान काल में गौरीदत्त पाण्डे का प्रादुर्भाव हुआ। इनका जन्म भी अल्मोड़ा के बल्दीगाड नामक स्थान में हुआ था। इनकी रचना गीदड़ सियार के गीत से प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त इस काल के कवियों में ज्वालादत्त जोशी, लीलाधर जोशी, चिन्तामणि जोशी का नाम उल्लेखनीय है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के कवियों ने पद्य रचनाओं के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया। शिवदत्त सती इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं। इनका जन्म 1870 ई. में फल्दाकोट रानीखेत में हुआ था। इनकी प्रमुख रचनाओं के नाम हैं- बुद्धिप्रवेश, मित्र विनोद, गोपीगीत, नेपाली भाषा के गीत, गोरखाली गीत, भाबर के गीत। गौरीदत्त पाण्डे गौर्दा (सन् 1872-1939) का जन्म अल्मोड़ा के पाटिया ग्राम में हुआ था। इनकी रचनाओं में गांधी दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती है। इनकी रचना गौरी गुटका नाम से प्रसिद्ध है। शिरोमणि पाठक (सन् 1890-1955) का जन्म स्थान शीतलाखेत है। इनके द्वारा झौड़े, चांचरी तथा भगनौल लिखे गए। इसके अतिरिक्त इस काल के कवियों में श्यामाचरण दत्त पंत, रामदत्त पंत, चन्द्रलाल वर्मा चौधरी, जीवनचन्द्र जोशी, तारादत्त पाण्डे, जयन्ती देवी पंत, पार्वती उप्रेती, दुर्गादत्त पाण्डे, दीनानाथ पंत, तथा लक्ष्मी देवी के नाम प्रमुख हैं।

स्वतंत्रता के बाद अर्थात् 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सामाजिक जीवन के यथार्थ से जुड़ी चीजें कुमाउनी लोकगीतों के माध्यम से प्रकट होने लगीं। भाषा भी अपने परिष्कार तथा परिमार्जन की तरफ अग्रसर हुई। स्वतंत्रता आंदोलन के बाद लिखी गई कुमाउनी कविताओं में वैयक्तिक चेतना के अतिरिक्त सामाजिक सुधार के स्वर अधिक मुखरित हुए। इस काल के प्रमुख कवियों में चारूचन्द्र पाण्डे प्रथम कवि माने जाते हैं। इनका जन्म सन् 1923 ई. को हुआ। ब्रजेन्द्र लाल साह का नाम भी 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के कवियों में आदर के साथ लिया जाता है। इनकी रचनाओं में लोकजीवन की मधुरतम छवि दिखाई देती है। कुमाउनी रामलीला को गेयपूर्ण ढंग से इन्होंने लिखा। इस काल को अद्यतन तक माना जाता है। शेर सिंह बिष्ट 'अनपढ़ इस समय के प्रख्यात रचनाधर्मी रहे। इनकी काव्य प्रतिभा लोगों के मन में नए उत्साहपूर्ण स्वर जाग्रत करती

है। शेरदा अनपढ़ की प्रमुख रचनाएं, मोरि लटि पटि, जांठिक घुडुर, हसणै बहार हैं। बंधीधर पाठक जिज्ञासु का जन्म सन् 1934 को हुआ। ये एक कुशल आकाशवाणी के कलाकार थे। इनकी कुमाउनी रचना 'सिसौण' युगीन परिस्थितियों का जीता जागता उदाहरण है। इसके अतिरिक्त देवकी महारा, गोपाल दत्त भट्ट, किसन सिंह बिष्ट, कत्यूरी, रतन सिंह किरमोलिया, देव सिंह पोखरिया, शेर सिंह बिष्ट, दिवा भट्ट, बालम सिंह, जनोटी, त्रिभुवन गिरी, बहादुर बोरा, श्रीबंधु, दीपक कार्की एम.डी.अण्डोला, दामोदर जोशी, देवांशु, विपिन जोशी, श्याम सिंह कुटौला, देवकीनंदन काण्डपाल ने 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में परिनिष्ठित कुमाउनी लोकगीतों का प्रणयन किया।

5.3.1 कुमाउनी लोकगीत: स्वरूप विवेचन

लोकगीत शब्द का निर्माण लोक और गीत शब्दों से मिलकर हुआ है। लोकमानस की तरंगायित लयबद्ध अभिव्यक्ति को लोकगीत कहा जाता है। लोक जीवन में व्यक्ति अनेक उतार-चढ़ावों का सामना करता है। जीवन जीने की यही संघर्षपूर्ण अवस्था में व्यक्ति का विवेक या मानस उसे कुछ रचने के लिए प्रेरित करता है। अनुभूतियों को व्यक्ति द्वारा शब्दों वाक्यों के रूप में पारिभाषित करने से लोकगीतों का निर्माण हुआ है। डॉ. देवसिंह पोखरिया ने लोकगीतों के संबंध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है- 'लोकमानस की सुख दुखात्मक अनुभूति ही अनपढ़ गेय और मौखिक रूप में लोकगीत के रूप में फूट पड़ती है। साहित्यिक दृष्टि से काव्यात्मक गुणों की अभिजात्यता के अभाव में भी इनका अपना अलग ही नैसर्गिक सौन्दर्य होता है। ये लोकजीवन की धरती से स्वतः स्फूर्त जलधार की तरह होते हैं। इनमें लोकमानस का आदिम और जातीय संगीत सन्निहित रहता है। लोक जीवन के विविध क्रियाकलापों में रसज्ञ रंजन करने वाली अभिवृत्ति को लोकगीत माना जा सकता है।

डॉ. सदाशिव कृष्ण फड़के ने लोकगीत को पारिभाषित करते हुए लिखा है- लोकगीत विद्यादेवी के उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास प्रश्वास हैं। सहजानंद में से उत्पन्न होने वाली श्रुति मनोहरत्व से सहजानंद में विलीन हो जाने वाली आनंदमयी गुफाएं हैं। रामनरेश त्रिपाठी के विचारों को हम यहां समझ सकते हैं कि ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इसमें अलंकार नहीं केवल रस है। छंद नहीं केवल लय है। लालित्य नहीं केवल माधुर्य हैं। सभी मनुष्य के स्त्री पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठ कर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम्य गीत हैं।

कुमाउनी लोकगीतों के निर्माण के पीछे यहां की प्रकृति की सुकुमारता तथा निश्छल जनजीवन का बहुत बड़ा हाथ है। अपनी माटी, अपने लोग तथा अपनी संस्कृति के संवाही सुरों ने लोकगीतों की समष्टि रची है। हमारे कुमाउनी आदिकालीन आशु कवि अपने अन्तर्मन की विचाराधारा को बड़ी लयात्मक अभिव्यक्ति के साथ समाज के समक्ष रखते थे। वही निश्छल एवं गेय पूर्ण शैली लोकगीतों के सृजन में उपादेय सिद्ध हुई। यहाँ हम जान पाएंगे कि लोकगीतों में

मानवीय संवेदनाओं का पुट रहता है तथा ये सरस जीवन शैली के आधारभूत उपागम भी होते हैं। लोकगीत शब्द का निर्माण लोक और गीत शब्दों से मिलकर हुआ है। लोकमानस की तरंगायित लयबद्ध अभिव्यक्ति को लोकगीत कहा जाता है। लोक जीवन में व्यक्ति अनेक उतार-चढ़ावों का सामना करता है। जीवन जीने की यही संघर्षपूर्ण अवस्था में व्यक्ति का विवके या मानस उसे कुछ रचने के लिए प्रेरित करता है। अनुभूतियों को व्यक्ति द्वारा शब्दों वाक्यों के रूप में पारिभाषित करने से लोकगीतों का निर्माण हुआ है। डॉ. देवसिंह पोखरिया ने लोकगीतों के संबंध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है- 'लोकमानस की सुख दुखात्मक अनुभूति ही अनपढ़ गेय और मौखिक रूप में लोकगीत के रूप में फूट पड़ती है। साहित्यिक दृष्टि से काव्यात्मक गुणों की अभिजात्यता के अभाव में भी इनका अपना अलग ही नैसर्गिक सौन्दर्य होता है। ये लोकजीवन की धरती से स्वतः स्फूर्त जलधार की तरह होते हैं। इनमें लोकमानस का आदिम और जातीय संगीत सन्निहित रहता है।

लोक जीवन के विविध क्रियाकलापों में रसज्ञ रंजन करने वाली अभिवृत्ति को लोकगीत माना जा सकता है। डॉ. सदाशिव कृष्ण फड़के ने लोकगीत को पारिभाषित करते हुए लिखा है- लोकगीत विद्यादेवी के उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास प्रश्वास हैं। सहजानंद में से उत्पन्न होने वाली श्रुति मनोहरत्व से सहजानंद में विलीन हो जाने वाली आनंदमयी गुफाएं हैं।

रामनरेश त्रिपाठी के विचारों को हम यहां समझ सकते हैं कि ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इसमें अलंकार नहीं केवल रस है। छंद नहीं केवल लय है। लालित्य नहीं केवल माधुर्य हैं। सभी मनुष्य के स्त्री पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठ कर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम्य गीत हैं।

कुमाउनी लोकगीतों के निर्माण के पीछे यहां की प्रकृति की सुकुमारता तथा निश्छल जनजीवन का बहुत बड़ा हाथ है। अपनी माटी, अपने लोग तथा अपनी संस्कृति के संवाही सुरों ने लोकगीतों की समष्टि रची है। हमारे कुमाउनी आदिकालीन आशु कवि अपने अन्तर्मन की विचाराधारा को बड़ी लयात्मक अभिव्यक्ति के साथ समाज के समक्ष रखते थे। वही निश्छल एवं गेय पूर्ण शैली लोकगीतों के सृजन में उपादेय सिद्ध हुई। यहाँ हम जान पाएंगे कि लोकगीतों में मानवीय संवेदनाओं का पुट रहता है तथा ये सरस जीवन शैली के आधारभूत उपागम भी होते हैं।

5.3.2 कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण

कुमाउनी लोकगीतों के सम्यक अध्ययन के लिए हम उनका वर्गीकरण करेंगे। पूर्व में लोक साहित्यकारों द्वारा किए गए वर्गीकरण को आधार मानकर उनका विषयवस्तुगत भाषायी, प्रकृति, तथा जातिगत आदि आधारों पर वर्गीकरण किया जाना समीचीन प्रतीत होता है। डा. पोखरिया ने कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण करते हुए लिखा है- 'वर्ण्य विषय, भाषा क्षेत्र और काव्य रूप आदि की दृष्टि से लोकगीतों के निम्न आधार हो सकते हैं-

(1) विषयगत आधार (2) क्षेत्रीय आधार (3) भाषागत आधार (4) काव्य रूप गत आधार (5) जातिगत आधार (6) अवस्था भेद (7) लिंगगत आधार (8) उपयोगिता का आधार (9) प्रकृति भेद

कुमाउनी के आधिकारिक विद्वानों, विशेषज्ञों तथा शोधकर्ताओं ने सामान्यतया विषयवस्तु सम्मत आधार को ही अपनाया है। वैषयिक तथा वर्ण्य विषय को स्वीकारते हुए हम अन्य विद्वानों के वर्गीकरण को इस प्रकार समझ पाएंगे-

डॉ. त्रिलोचन पाण्डे का वर्गीकरण

मुक्तक गीत

- I. नृत्य प्रधान -झोड़ा चांचरी छपेली
- II. अनुभूति प्रधान- भगनौल तथा न्यौली
- III. तर्क सम्मत- बैर
- IV. संवाद प्रधान तथा स्फुट

(2) संस्कार प्रधान

- I. अनिवार्य
- II. विशेष

(3) ऋतुगीत

(4) कृषिगीत

(5) देवीदेवता व्रत त्योहार के गीत

(6) बाल गीत

डा. कृष्णानंद जोशी ने कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

- (1) धार्मिक गीत
- (2) संस्कार गीत
- (3) ऋतु गीत
- (4) कृषि संबंधी गीत

(5) मेलों के गीत

(6) परिसंवादात्मक गीत

(7) बाल गीत

लोकसाहित्य तथा कुमाउनी भाषा साहित्य के विद्वान भवानीदत्त उप्रेती ने विषयस्तुगत आधार को वर्गीकरण के लिए उपयुक्त माना है-

(1) संस्कार गीत

(2) स्तुति पूजा और उत्सव गीत

(3) ऋतु गीत

(4) जाति विषयक गीत

(5) व्यवसाय संबंधी गीत

(6) बाल गीत

(7) मुक्तक गीत

विभिन्न विद्वानों द्वारा किए वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि लगभग सभी विद्वानों ने विषय को ही वर्गीकरण का आधार माना है। यहां हम वर्गीकरण के लिए विषयवस्तुगत आधार का चयन करेंगे तथा विभिन्न लोकगीतों की मौलिक प्रवृत्तियों से अवगत हो सकेंगे।

धार्मिक पुराण कालीन संदर्भित लोकगीत-पुराण काल की कथाओं एवं आख्यानों को आरंभिक दौर से लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता रहा है। कृष्णानंद जोशी ने धार्मिक गीतों के विषय में लिखा है- इन गीतों में सर्वप्रथम वे गीत आते हैं, जिनकी विषयवस्तु पौराणिक आख्यान से संबंधित है। इसी प्रकार के एक गीत में वर्णित है वह क्षण जब सृष्टिकार ने महाशून्य में हंस का एक जोड़ा प्रकट किया और हंसिनी का अंडा गिरकर फूटने से एक खंड से आकाश बना और दूसरे से धरती। इसी प्रकार महाभारत काल के कौरव पाण्डवों की कथा के अंश लोकगीतों के माध्यम से प्रकट किए जाते रहे हैं। रामचरितमानस में उल्लिखित श्रीरामचन्द्र कथा का वर्णन भी इन गीतों के माध्यम से देखे जा सकते हैं।

उदाहरणार्थ

बाटो लागी गया मुनि तपसिन

जै पिरथी राजा को रैछ एक पूत

तिनरा देश वैछ बार बिसी हलिया, बार बीसी बौसीया

रोपन का खेत भगवान कूल टुटी भसम पड़ी गेछ,

लोकमानस की महाभारत कालीन प्रस्तुति इन पंक्तियों में देखी जा सकती है-

पांडवन की लछण बिराली, कौरवन की पहाड़ी कुकुड़ी,

तेरी बिराली कुकुड़ी ब्यूज बैरछ बिराली कुकुड़ी मारी दीयो ।

इन गीतों में पौराणिक कथा सार की अभिव्यक्ति को हम सरलता से समझ सकते हैं।

संस्कार गीत- मनुष्य के जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्त्व है। बच्चे के जन्म से लेकर मृत्यु तक विविध संस्कार सम्पन्न किए जाते हैं। कुमाउनी संस्कार गीतों में जन्म छठी, नामकरण उपनयन विवाह आदि के गीत सम्मिलित हैं, ये गीत प्रायः महिलाओं द्वारा गाए जाते हैं। संस्कारों में होने वाली पूजा अनुष्ठान के अनुसार इन गीतों को गाया जाता है। यहां हम कुछ कुमाउनी संस्कार गीतों को संक्षेप में जानने का प्रयास करेंगे। कुमाऊँ में प्रत्येक सुअवसर पर शकुनांखर सगुण (सगुन) के गीत गाने की परंपरा है।

ध्यायनु भयै, ध्यायनु भैये, थाति को थत्याल

ध्यायनु भयै, ध्यायनु भैय, भुई को भूम्याल

बच्चे के जन्म के अवसर पर यह गीत गाया जाता है।

धन की धौताला, धन की धौ,

धन की धौताला धन की धौ,

यरबा सिर सिड़ जोड़ सिरसिड़

पाडव्वा बाबै जोड़ जोड. बावै

विवाह के समय फाग के गीतों की विशेष परंपरा देखी जा सकती है।

पैलिक सगुन पिडली पिठाक

उति है सगुन दर्ई दर्ई माछ।

पिड.ली पिठाक कुटल है

खनल पनीया ध्वेज उखल कुटल

ऋतु गीत- विभिन्न ऋतुओं के आगमन पर कुमाऊं में लोकगीत प्रचलित हैं, बसंत ऋतु के आगमन पर लोगों का तनमन सुवासित हो जाता है। उसी प्रकार वर्षा ऋतु के आगमन पर भी मन में उठने वाली तरंगे नया आभास जगाती है। ऋतु गीतों में विरह वेदना प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन समविष्ट रहता है। आप ऋतुराज बसंत के यौवन को इस गीत में देख सकते हैं।

रितु ऐ गे हेरी फेरी ओ गरमा रितु,

मारीया मानीख पलटी नी ऊंनो।

इन गीतों में अपने प्रियजनों की स्मृति, निराशा तथा भावुकता देखी जा सकती है।

कृषि विषयक गीत- कुमाऊं में कृषि विषयक गीतों को हुड़की बौल के नाम से जाना जाता है। प्राचीन विचाराधारा के अनुसार कृषि कार्यों में तत्परता तथा एकाग्रता के लिए मनोरंजक गीत सुनाए जाने का प्रचलन है। हुड़की बौल में एक व्यक्ति हुड़के की थाप पर गाता हुआ आगे बढ़ता रहता है तथा कृषि कार्य निराई गुड़ाई या रोपाई करने वाले लोग कार्य करते हुए बड़ी लगन से बौल लगाने वाले के स्वर को दुहराते हैं, इसमें कार्य भी जल्दी सम्पन्न हो जाता है तथा मनोरंजन के द्वारा लोगों को थकान का अनुभव नहीं होता है। हुड़कि बैल में ऐतिहासिक लघु गाथाएं गायी जाती हैं।

लोकोत्सव एवं पर्व संबंधी गीत:- लोक के विविध उत्सवों, पर्वों पर जो गीत गाए जाते हैं, उनमें लोक मनोविज्ञान तथा लोकविश्वास के लक्षण पाए जाते हैं। स्थानीय पर्वों फूलदेई तथा घुघुतिया को प्रथागत आदर्शों के साथ मनाया जाता है। फूल संक्रान्ति के अवसर पर बच्चे गांव के प्रत्येक घर के दरवाजे पर सरसों तथा फूलदेई के फूल अर्पित करते हुए कहते हैं-

फूल देई छममा देई

भरभकार दैणी द्वारा

जतुकै दिछा उतुकै सई

फूल देई छम्मा देई

घुघुतिया (मकर संक्रान्ति) को बच्चे आटे के बने घुघुतों की माला गले में डालकर प्रातः कौवे को बुलाते हैं-

‘काले कौवा काले काले काले

घुघुती मावा खाले खाले खाले

तु ल्हि जा बड़ म्यकै दिजा सुनु घड़

काले कौवा काले काले काले

कुमाऊँ में हरेला पर्व हरियाली का प्रतीक है। हरेले के त्यौहार में हरेला आशीष के रूप में सिर पर रखा जाता है। इस अवसर पर आशीर्वचन देते हुए कहते हैं-

हर्याली रे हर्याली हरिया बण जाली

दुबड़ी कैछ दुबै चड़ि जूलो

चेली कैछ मै मैतुलि जूलो, आओ चेलि खिलकन मैत

तुमारे बाबू घर, तुमारे भइयन घर हरयाली को त्यार

विभिन्न प्रकार के पर्वोत्सवों पर गाए जाने वाले इन गीतों में उद्बोधन तथा आशीर्वाद के भावों को देखा जा सकता है।

मेलों के गीत:- मेला शब्द की उत्पत्ति मेल से हुई है। कुमाऊँ में विभिन्न प्रकार के मेले आयोजित होते आए हैं। इन मेलों में लोग पारस्परिक मेल मिलाप करते हैं। प्राचीन काल से ज्ञानी लोग मेले में अपनी कवित्व शक्ति का प्रदर्शन करते आए हैं। इनमें सामूहिक नृत्यगीत भी शामिल हैं। यहां पर हम देखेंगे कि मेलों के माध्यम से सामूहिक गायन पद्धति से लोग मनोरंजन करते हैं। इन गीतों में झोड़ा, चांचरी, छपेली, भगनौल और बैर का प्रचलन है। हुड़के की थाप पर लोग एक दूसरे से श्रृंखलाबद्ध होकर थिरकते दिखाई देते हैं। इन लोकगीतों में स्थानीय देवी देवताओं की स्तुति के साथ-साथ प्राचीन वैदिक कालीन संदर्भ कथाओं का गायन भी किया जाता है। झोड़ा और चांचरी में गोल घेरे में कदम से कदम मिलाकर नृत्य किया जाता है। इसमें लयबद्ध तरीके से गायन पद्धति अपनाई जाती है।

चौकोटै कि पारवती स्कूल नि जानि बली इस्कूला नि जानी ,

मासी का परताप लौंडा स्कूल नि जानि बली इस्कूलनि जाना।

छपेली नृत्य में द्रुत गायन शैली अपनाई जाती है। ओहो करके गीत शुरू किया जाता है। भगनौल में पद्यात्मक उक्तियों को आरोह अवरोह के साथ प्रस्तुत किया जाता है। इन उक्तियों को गेयपदों में जोड़ने वाली गीत शैली जोड़ के रूप में जानी जाती है। बैर में युद्धों का वर्णन किया जाता है। इसमें तार्किक कथनों के द्वारा एक दूसरे को निरुत्तर करने की प्रतियोगिता होती है।

परिसंवादात्मक गीत- संवाद शैली से युक्त गायन पद्धति को परिसंवादात्मक गीतों की श्रेणी में रखा जाता है। इन गीतों में संवादों के माध्यम से विभिन्न पात्रों के कौशल को जाना जा सकता है। डॉ कृष्णानंद जोशी के अनुसार- 'हरियाला का त्यौहार आने पर एक माँ अपनी बिटिया को

मायके बुलाने का अनुरोध करती है- कन्या के पिता के जाते समय के अपशकुन माँ के हृदय को दुखित कर देते हैं। बेटी के ससुराल जाकर पिता को बताया जाता है कि 'रघी' घास लकड़ी लाने जंगल गई हुई है, पानी भरने गई हुई है आदि। रघी के पिता बेटी की प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं। उस रघी को, जो अब कभी नहीं लौटेगी, गीत के दूसरे भाग में वह दृश्य 'फ्लैश बैक' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जिसमें रघी की ननद अपनी माँ से अनुरोध करती है कि पोटली में रखे च्यूले उसने खाए हैं। रघी ने नहीं, रघी को मत पीटो। ओ क्रूर माँ! तुमने रघी को मारकर उसका शव तक गोठ में छिपा दिया।

खाजा कुटुरी मैले लुकैछ ईजू पापिणी बोजि नै मार,

पाना मारीछ गोठ लुकैछ, ईजू पापिणी बोजि नै मार।

साग काटछ राम करेली, ईजू पापिणी बोजि नै मार।

इन गीतों में लोक जीवन की मर्यादक पीड़ा का भाव देखा जा सकता है। हमें पता चलता है कि तत्कालीन परिस्थितियों में मानवीय व्यवहार के तौर तरीकों में कितनी असभ्यता थी। कुछ ऐतिहासिक लोक कथाओं के आख्यान भी हम इन संवाद प्रधान गीतों के माध्यम से जान सकेंगे।

बाल गीत- व्यक्ति के जीवन की शुरूआत बचपन से होती है। बालपन में शिशु का मन निश्चल होता है। वह खेलना पसंद करता है। जीवन के गंभीर उतार चढ़ावों से अनभिज्ञ शिशु अपनी किलकारियों में ही खेल का अनुभव करता है। बच्चों द्वारा आपस में खेले जाने वाले खेलों में ही गीत विकसित होते हैं। इन गीतों का निर्माण स्वतः स्फूर्त माना जाता है। यथा -

डक्की डक्की मुक्का पड़ौ

ओ पाने ज्यू भ्यो पड़ो

सात समुन्दर गोपी चन्दर

बोल मेरी मछली कितना पानी

(दूसरी कहती है) इतना पानी

बच्चे गीतों के साथ साथ अपने भावों को हाथ हिलाकर भी प्रकट करते हैं। कहना उचित होगा कि बालगीत बच्चों के सुकोमल मनोविज्ञान की स्वच्छंद सरल अभिव्यक्ति है। जिनमें किसी गंभीर विषय बोध की सदा अनुपस्थिति रहती है।

बोध प्रश्न

क - सही विकल्प को चुनिए -

1. 'फूल देई छम्मा देई' लोकगीत की किस कोटि में आता है?

- I. बालगीत
- II. नृत्यगीत
- III. पर्व संबंधी गीत
- IV. भगनौल

2. 'गौरी गुटका' नामक रचना है -

- I. गुमानी पंत
- II. रामदत्त पंत
- III. गौरीदत्त पाण्डे
- IV. शेरसिंह विष्ट

3. ऋतुओं का वर्णन किस गीत में मिलता है ?

- I. संस्कार गीत
- II. ऋतु गीत
- III. कृषि संबंधी गीत
- IV. पर्व उत्सव संबंधी गीत

ख - 20 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के लोकगीतों का इतिहास संक्षेप में लिखिए।

ग - लोकगीत क्या हैं ? विषयगत आधार पर लोकगीतों का वर्गीकरण कीजिए।

घ - 'झोड़ा' और 'भगनौल' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

5.4 कुमाउनी लोकगीतों का भावपक्षीय वैशिष्ट्य

हम सब जानते हैं कि लोकगीत लोकमानस की वह तरंगायित अभिव्यक्ति है, जो नियति और मानवीय सत्ता के विविध रूपों को समाहित किए रहती है। मानव ने भौतिक विकास के सापेक्ष मानसिक विकास के द्वारा समाज में अपने अस्तित्व को मुखर किया है। लोकगीत लोकमानस के संवेदना के मौलिक तत्व हैं। अनुभूति तथा ज्ञान की लयबद्ध अभिव्यक्ति प्रायः लोकगीतों के माध्यम से प्रकट होती है।

भावपक्ष की दृष्टि से हम देखते हैं कि गीतों का निर्माण ही भाव भूमि पर हुआ है। ये वही भाव हैं, जो प्रकृति के नाना रूपों में, व्यथा, वेदना, हर्ष, विषाद आदि के रूपों में शब्दों में स्वतः उतर आते हैं। इनकी यही लयात्मक प्रवृत्ति इनको रोचक बनाए हुए है। लोकगीतों में व्यष्टि और समष्टि का अपूर्व मिश्रण होता है, जो समाज के चेतनामूलक फलक को प्रभावित कर उसे सरस

बना देता है। अतः हम कह सकते हैं कि व्यक्ति की सुख दुखात्मक स्थितियों में अन्तर्मन से जो वाणी फूट पड़ती है तथा लोक के लिए एक रूचिकर शैली बन जाती है, वही लोकगीत कहलाता है।

5.4.1 कुमाउनी लोकगीतों की विशेषताएँ

कुमाउनी लोकगीत कुमाऊँ के जनमानस की व्यापक संवेदनशीलता को प्रकट करते हैं। वाचिक तौर पर वर्षों से जीवित इन गीतों में अपनी माटी की सुगंध निहित हैं। ये गीत मानव को मानव से जोड़ने में यकीन रखते हैं। कहीं कहीं आप पाएँगे कि इन गीतों में पौराणिक चरित्रों का चित्रण भी हुआ है। वैदिक कालीन समाज व्यवस्था तथा प्रमुख पात्र एवं घटनाओं से संबंधित आख्यान इन लोकगीतों के आधार बनें हैं। सत्य की अनुभूति लोकगीतों के माध्यम से स्पष्ट झलकती है।

इन गीतों में पहाड़ के पशुपक्षियों तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन देखने को मिलता है। 'न्यौली' नामक लोकगीत एक विरही पक्षी पर आधारित है। न्यौली एक पहाड़ी प्रजाति की कोयल को कहा जाता है। इसे विरह का प्रतीक माना जाता है। ऐसी धारणा है कि न्यौली अपने पति के वियोग में दिन रात मर्मन्तक स्वरों से जंगल को गुंजायमान बनाती फिरती है। लोकमानस ने उस पक्षी को अपने संवेदना के धरातल पर उकेरा है। सामान्य अर्थों में न्यौली का अर्थ 'नवेली' 'नई' से लिया जाता है।

कुमाउनी लोकगीत विभिन्न धार्मिक संस्कारों के संवाहक हैं। गर्भाधान, नामकरण, अन्नप्राशन, जनेऊ, विवाह आदि संस्कारों में गाए जाने वाले लोकगीत युगों से चली आ रही वाचिक परंपरा के सत्यानुभूत कथन हैं। लोकगीतों की विशेषता उनके लयात्मक गायन शैली में निहित है। प्रेम, करुणा विरह आदि की अवस्थाओं पर कई लोकगीत समाज में प्रचलित हैं।

डॉ. त्रिलाचन पाण्डे ने कुमाउनी लोकगीतों की विशेषता को बताते हुए कहा है - 'कुमाऊँ में जमींदार प्रथा तो नहीं है, फिर भी कुछ लोगों के पास बहुत जमीन हो गई है। दूसरे लोग बटाई पर काम करते हैं। जमीन भी 'तलाऊँ', मलाऊँ, आबाद, बंजर कई प्रकार की है। नदियों की घाटियों वाली भूमि अधिक उत्पादक होती है, जिसे 'स्यारा' कहते हैं। दलदली भूमि 'सिमार' कहलाती है। इसकी उत्पादक क्षमता को ध्यान में रखकर जो लगान वर्षों पूर्व अंग्रेजों द्वारा निर्धारित किया गया या उसमें समय पर परिवर्तन होते गए। अब कुछ वर्ष पूर्व भूमि नाप संबंधी नई योजना प्रारंभ हुई तो कुछ लोग अपनी जमीन बढ़ा चढ़ाकर लिखाने लगे। कुछ पीछे रह गए। गीतकारों ने इस स्थिति की सटीक व्याख्या की है।'

इस प्रकार आप देखेंगे कि कुमाउनी लोक गीत स्वयं में अनेक विशेषताओं को समेटे हैं। लौकिक ज्ञान की धरातल से जुड़ी प्रस्तुतियाँ इन गीतों के माध्यम से होती हैं। इन गीतों में कल्पना भी चरम सीमा पर होती है। इन गीतों में अपने समय की सजीवता है। मानव व्यवहार के

तौर तरीकों तथा समाज मनोविज्ञान के कई तथ्य इन गीतों द्वारा अभिव्यक्त होते आए हैं। प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन इन गीतों का प्रमुख प्रतिपाद्य होता है। लोक सत्य के उद्घाटन में ये गीत अग्रणी हैं। प्राचीन काल की रोचक एवं ज्ञानवर्धक ज्ञान की समाविष्टि इन गीतों का स्वभाव है।

अतः कहा जा सकता है कि कुमाउनी लोकगीतों की विशेषता यहाँ के जनमानस की सांगीतिक प्रस्तुति है। ये विषय वैविध्य का लक्षण प्रदर्शित करते हैं। वर्गीकरण के आधार पर अलग अलग विषयों के लोकगीतों में तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन हुआ है, जिनके द्वारा समाज को मानसिक जगत में बहुत लाभ प्राप्त हुआ है।

5.4.2 कुमाउनी लोकगीतों का महत्त्व

कुमाउनी लोकगीतों द्वारा मनुष्य के भावों को प्रकट करने की तरल क्षमता प्रकट होती है। ये लोकगीत समाज का उचित मनोरंजन करते हैं। साथ ही इनमें अपने समय को व्यक्त करने की पर्याप्त क्षमता होती है। देवसिंह पोखरिया ने 'कुमाउनी संस्कृति के विविध आयाम' पुस्तक में संतराम अनिल के विचारों को प्रकट करते हुए लिखा है – 'लोकगीत साहित्य की अमूल्य और अनुपम निधि हैं। इनमें हमारे समाज की एक एक रेखा, सामयिक बोध की एक एक अवस्था, सामूहिक विजय पराजय, प्रकृति की गति, विधि, वृक्ष, पशु, पक्षी और मानव के पारस्परिक संबंध बलि, पूजा, टोने टोटके, आशा, निराशा, मनन और चिन्तन सबका बड़ा ही मनोहारी वर्णन मिलता है।'

लोकगीतों के महत्त्व को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है -

- (1) लोकगीतों में युगीन परिस्थितियों का वर्णन मिलता है।
- (2) ये गीत मानवी संवेदना के हर्ष-विषाद, सुख दुःख तथा काल्पनिकता को अभिवृद्ध करते हैं।
- (3) लोकगीतों में सामाजिक परिवेश को सरस बनाने की कला होती है।
- (4) लोकगीतों में गीति तत्व तथा लय होने से ये वाचिक परंपरा के मनोहारी आख्यान कहे जाते हैं।
- (5) लोकगीत मानव समाज को आदिम परंपरा से सभ्य समाज की तरफ अग्रसर करते हैं।
- (6) लोकगीतों में मौलिकता होती है, जो व्यक्ति के जीवन के यथार्थ स्वरूप को सामने लाती है।

(7) कुमाऊँ में प्रचलित लोकगीतों में प्रत्येक युगानुसार उनकी विकासवादी धारणा को समझा जा सकता है।

(5) ये कार्य संपादन के तरीकों में प्रयुक्त होकर कार्य का निष्पादन त्वरित गति से करते हैं।

स्पष्टतः लोकगीतों में समाज के विभिन्न जातियों, धर्मों, अनुष्ठानों तथा उनके तौर तरीकों पर प्रकाश पड़ता है। हम लोकगीतों के माध्यम से समाज की तत्कालीन स्थिति को सरलता से जान सकते हैं।

बोधात्मक प्रश्न

क - नीचे गए प्रश्नों में सही विकल्प चुनकर लिखिए -

1. लोकगीत की वह पद्धति जिसमें स्त्री पुरुष एक दूसरे के कंधे में हाथ डालकर गोलाकार भाग में कदम मिलाकर चलते हैं, कहलाती है -

- I. बैर
- II. जागर
- III. झोड़ा
- IV. जोड़

2 - संवाद मूलक लोकगीत है -

- I. झोड़ा
- II. छपेली
- III. चाँचरी
- IV. बैर

3. संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले गीत हैं -

- I. छपेली
- II. भगनौल
- III. फाग
- IV. होली के गीत

(4) लोकगीतों के महत्त्व पर प्रकाश डालिए

(5) कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण का सबसे सरल और व्यावहारिक आधार कौन सा है ? लोकगीतों का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

5.5 कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय

कुमाउनी लोकगीत प्राचीन काल से वर्तमान काल तक लोकजीवन में निर्बाध रूप से प्रचलित रहे हैं। आरंभिक काल से चली आ रही लोकगीतों की परंपरा में यहाँ के जनमानस की प्रकृतिपरक, मानवीय संवेदना, विरह एवं मनोरंजन का पुट स्पष्ट झलकता है। पर्वतीय जीवन शैली को आप इन सुरधाराओं में आसानी से पा सकते हैं। पशु पक्षियों का आलंबन लेकर उसे मानवीय सत्ता से जोड़कर लोकगीतों को मर्मस्पर्शी बनाया गया है। कुमाऊँ क्षेत्र में प्रचलित लोकगीतों में समय के साथ आए बदलाव को भी परखा जा सकता है। लोकवाणी की तर्ज पर जिन प्राचीन गीतों में प्रकृति सम्मत आख्यान मिलते हैं, वहीं आधुनिक लोकगीतों में नए जमाने की वस्तुओं, फैशन का उल्लेख मिलता है। नए लोकगीत व्यावसायिक दृष्टिकोण से बनाए तथा गाए जाते हैं। इन गीतों का ध्वनिमुद्रण उच्च इलेक्ट्रॉनिक तकनीक पर आधारित होता है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि कुमाऊँवासी पहाड़ को छोड़कर मैदानी इलाकों को पलायन कर रहे हैं। मैदानी शहरी जिन्दगी में उन्हें ये लोकगीत पहाड़ी भाषा की मनोरंजक स्मृति मात्र का सुख देते हैं। फिर भी कुछ लोग मौलिक प्राचीन वाचिक परंपरा को अपनाने में ही विश्वास रखते हैं। कुमाउनी लोकसाहित्य के मर्मज्ञ डॉ. देवसिंह पोखरिया तथा डॉ. डी. डी. तिवारी ने अपनी संपादित पुस्तक 'कुमाउनी लोकसाहित्य' में न्यौली, जोड़, चाँचरी, झोड़ा, छपेली, बैर तथा फाग का विशद वर्णन किया है। यहाँ हम इन लोकगीतों को संक्षेप में समझने का प्रयास करेंगे।

न्यौली - न्यौली एक कोयल प्रजाति की मादा पक्षी है। ऐसा माना जाता है कि यह न्यौली अपने पति के विरह में निविड़ जंगल में भटकती रहती है। शाब्दिक अर्थ के रूप में न्यौली का अर्थ नवेली या नये से लगाया जाता है। कुमाऊँ में नई बहू को नवेली कहा जाता है। सुदूर घने बांज, बुरांश के जंगलो में न्यौली की सुरलहरी को सहृदयों ने मानवीय संवेदनाओं के धरातल पर उतारने का प्रयास गीतों के माध्यम से किया है। न्यौली की गायनपद्धति में प्रकृति, ऋतुएँ, नायिका के नख शिख भेद निहित हैं। छंदशास्त्र के दृष्टिकोण से न्यौली को चौदह वर्णों का मुक्तक छंद रचना माना जाता है।

न्यौली का उदाहरण -

चमचम चमक छी त्यार नाके की फूली
धार में धेकालि भै छै, जनि दिशा खुली
(तेरे नाक की फूली चमचम चमकती है, तुम शिखर पर प्रकट क्या हुई ऐसा लगा कि जैसे दिशाएँ खुल गई हों)

जोड़ - जोड़ का अर्थ जोड़ने से है। गणित में दो और दो चार होता है। कुमाउनी लोकसाहित्य में जोड़ का अर्थ पदों को लयात्मक ढंग से व्यवस्थित करना है। संगीत या गायन शैली को देखते हुए उसे अर्थलय में ढाला जाता है। जोड़ और न्यौली लगभग एक जैसी विशेषता को प्रकट करते

हैं। द्रुत गति से गाए जाने वाले गीतों में हल्का विराम लेकर 'जोड़' गाया जाता है। जोड़ को लोकगायन की अनूठी विधा कहा जाता है।

उदाहरण -

दातुलै कि धार दातुलै की धार
बीच गंगा छोड़ि ग्यैयै नै वार नै पार

(अर्थात दराती की धार की तरह बीच गंगा में छोड़ गया, जहाँ न आर है न पार)

चाँचरी - चाँचरी शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'चर्चरी' से मानी गई है। इसे नृत्य और ताल के संयोग से निर्मित गीत कहा जाता है। कुमाऊँ के कुछ भागों में इसे झोड़ा नाम से भी जाना जाता है। 'चाँचरी' प्रायः पर्व, उत्सवों और स्थानीय मेलों के अवसर पर गाई जाती है। यह लोकगीत गोल घेरा बनाकर गाया जाता है, जिसमें स्त्री पुरुष पैरों एवं संपूर्ण शरीर को एक विशेष लय क्रमानुसार हिलाते डुलाते नृत्य करते हैं। चाँचरी प्राचीन लोकविधा है। मौखिक परंपरा से समृद्ध हुई इस शैली को वर्तमान में भी उसी रूप में गाया जाता है। चाँचरी में विषय की गहनता का बोध न होकर स्वस्थ मनोरंजन का भाव होता है, जो लोगों को शारीरिक और मानसिक रूप से लाभ पहुंचाता है।

उदाहरण - काठ को कलिजों तेरो छम

(वाह! का कलेजा तेरा क्या कहने)

चाँचरी में अंत और आदि में 'छम' का अर्थ बलपूर्वक कहने की परंपरा है। छम का अर्थ घुघरूँ के बजनेकी आवाज को कहा जाता है। छम' कहने के साथ ही चाँचरी गायक पैर व कमर को झुकाकर एक हल्का बलपूर्वक विराम लेता है।

झोड़ा - जोड़ अर्थात जोड़ा का ही दूसरा व्यवहृत रूप है झोड़ा। कुमाउनी में 'झ' वर्ण की सरलता के कारण 'ज' वर्ण को 'झ' में उच्चरित करने की परंपरा है। झोड़ा या जोड़ गायक दलों द्वारा गाया जाता है। एक दूसरे का हाथ पकड़कर झूमते हुए यह गीत गाया जाता है। इसे सामूहिक नृत्य की संज्ञा दी गई है। किसी गाथा में स्थानीय देवी देवताओं की स्तुति या किसी गाथा में निहित पराक्रमी चरित्रों के चित्रण की वृत्ति निहित होती है।

उदाहरण -

ओ घटै बुजी बाना घटै बुजी बाना

पटि में पटवारि हुँछौ गों में पधाना

आब जै के हुँछै खणयूणी बुड़ियै की ज्वाना

(नहर बांध कर घराट (पनचक्की) चलाई गई पट्टी में पटवारी होता है गांव में होता है प्रधान अब तू बूढ़ी हो गई है कैसे होगी जवान)

छपेली - छपेली का अर्थ होता है क्षिप्र गति या त्वरित अथवा द्रुत वाकशैली से उद्भूत गीत । यह एक नृत्य गीत के रूप में प्रचलित है। लोक के तर्कपूर्ण मनोविज्ञान की झलक इन गीतों में आप आसानी से पा सकते हैं। लोकोत्सवों, विवाह या अन्य मेलो आदि के अवसर पर लोक सांस्कृतिक प्रस्तुति के रूप में इन नृत्य गीतों को देखा जा सकता है। छपेली में एक मूल गायक होता है। शेष समूह के लोग उस गायक के गायन का अनुकरण करते हैं। स्त्री पुरुष दोनों मिलकर छपेली गाते हैं। मूल गायक प्रायः पुरुष होता है, जो हुड़का नामक लोकवाद्य के माध्यम से अभिनय करता हुआ गीत प्रस्तुत करता है।

छपेली में संयोग विप्रलम्भ श्रृंगार की प्रधानता होती है। प्रेम की सच्ची भावना को सुमधुर ढंग से गायकी में अभिव्यक्त किया जाता है।

उदाहरण - भाबरै कि लाई

भाबरै की लाई

कैले मेरि साई देखि

लाल साड़ी वाई

(भाबर की लाही भाबर की लाही किसी ने मेरी लाल साड़ी वाली साली देखी)

बैर - बैर शब्द का प्रयोग प्रायः दुश्मनी से लिया जाता है। लोकगायन की परम्परा में बैर का अर्थ 'द्वन्द्व' या 'संघर्ष' माना गया है। बैर तार्किक प्रश्नोत्तरों वाली वाक् युद्ध पूर्ण शैली है। इसमें अलग अलग पक्षों के बैर गायक गूढ़ रहस्यवादी प्रश्नों को दूसरे पक्ष से गीतों के माध्यम से पूछते हैं। दूसरा पक्ष भी अपने संचित ज्ञान का समुद्राटन उत्तर के रूप में रखता है। बैर गायक किसी भी घटना, वस्तुस्थिति अथवा चरित्र पर आधारित सवालों को दूसरे बैरियों के समक्ष रखता है। अन्य बैर गायक अपनी त्वरित बुद्धि क्षमता से इन प्रश्नों का ताबड़तोड़ उत्तर देकर उसे निरूत्तर करने का प्रयास करते हैं। कभी कभार इन बैरियों में जबरदस्त की भिड़न्त देखने को मिलती है। हार जीत के लक्ष्य पर आधारित इस गीत का परस्पर संवादी क्रम बड़ा ही रोचक होता है। इनके प्रश्नों में ऐतिहासिक चरित्र एवं घटना तथा मानवीय प्रकृति के विविध रूप समाविष्ट रहते हैं।

फाग - कुमाउनी संस्कृति में विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले मांगलिक गीतों को 'फाग' कहा जाता है। कहीं कहीं होली के मंगलाचरण तथा धूनी के आशीर्वाद लेते समय भी फाग गाने की परंपरा विद्यमान है। शुभ मंगल कार्यों यथा जन्म एवं विवाह के अवसर पर 'शकुनाखर' और फाग गाने की अप्रतिम परंपरा है। 'फाग' गायन केवल स्त्रियों द्वारा ही होता है।

होली के अवसर पर देवालियों में 'फाग' पुरुष गाते हैं। कुमाऊँ में संस्कार गीतों की दीर्घकालीन परंपरा को हम 'फाग' के रूप में समझते हैं। फाल्गुन मास के आधार पर ही 'फाग' का प्रादुर्भाव माना जाता है। मनुष्य के गर्भाधान, जन्म, नामकरण, यज्ञोपवीत, चूड़ाकर्म

विवाह आदि संस्कारों के अवसर पर यज्ञ अनुष्ठान के साथ इन गीतों का वाचन किया जाता है। गीत गाने वाली बुजुर्ग महिलाओं को 'गीदार' कहा जाता है।

उदाहरण - शकूना दे, शकूना दे सब सिद्धि

काज ए अति नीको शकूना बोल दर्ईणा

(शकुन दो भगवान शकुन दो सब कार्य सिद्ध हो जाएँ सगुन आखर से सारे काज सुन्दर ढग से सम्पन्न हो जाएँ)

बोध प्रश्न

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

- 1- 'न्यौली' का एक उदाहरण दीजिए।
- 2- फाग किस रूप में गाए जाते हैं ?
- 3- झोड़ा किस प्रकार गाया जाता है ?
- 4- चाँचरी से क्या तात्पर्य है ?

5.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप -

- कुमाउनी लोकगीतों का अर्थ स्वरूप तथा इतिहास समझ गए होंगे।
- आपने समझ लिया होगा कि विषयवस्तुगत आधार पर वर्गीकरण करने से आपके अध्ययन की रूपरेखा सरल और स्पष्ट हो गई है।
- कुमाउनी भाषा और बोलियों के लयात्मक स्वरूप को जान गए होंगे।
- कुमाऊँ में प्रचलित लोकगीतों की विशेषताएँ और महत्त्व को समझ चुके होंगे।
- प्रमुख कुमाउनी लोकगीतों का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे।

5. 7 शब्दावली

आशु	-	मौखिक
उद्गार	-	प्रकट होने वाले भाव
निश्छल	-	छल रहित
उपोदय	-	उपयोगी
स्फुट	-	अन्य, प्रकीर्ण
सन्निहित	-	समाया हुआ
गीदार	-	गीतकार
शकुनाखर	-	सगुन के आखर
न्यौली	-	नवेली, नई
अप्रतिम	-	अनूठी, अनोखी
फाग	-	संस्कार गीत
बैर	-	संघर्ष
छपेली	-	क्षिप्रगति वाली

5. 8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.3 के उत्तर

1- पर्व संबंधी गीत

2- गौरीदत्त पाण्डे

3 - ऋतु गीत

5.4 के उत्तर

क (1) झोड़ा

(2) बैर

(3) फाग

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जोशी, कृष्णानंद , कुमाउनी लोकसाहित्य , धार्मिक गीत ,112
2. पूर्वोक्त , संस्कार गीत (1)
3. पाण्डे त्रिलोचन ,कुमाऊँ का लोकसाहित्य , पृ -124,
4. पूर्वोक्त , पृ - 126
5. अचल, जुलाई 1938, श्रेणी - 1, श्रृंग - 6,
6. इंडियन एंटीक्वेरी ,जिल्द 14 (1885)
7. धर्मयुग , अक्टूबर 31, 1954 ,
8. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, खंड 9, भाग 4 ,पृ -167.
9. कुमाउनी लोकसाहित्य , देवसिंहं पोखरिया , डी.डी. तिवारी , पृ 2- 12
10. पाण्डे, त्रिलोचन ,कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य, उत्तर प्रदेश ,हिन्दी संस्थान, पृ - 190- 211
11. बटरोही , कुमाउनी संस्कृति, पृ - 13-25
12. पोखरिया, देवसिंह , कुमाउनी संस्कृति के विविध आयाम, पृ- 13- 15

5. 10उपयोगी / सहायक ग्रंथ सूची

- 1- न्यौली सतसई , डॉ.देवसिंहं पोखरिया, अल्मोड़ा बुक डिपो
- 2- कुमाउनी कवि गौर्दा का काव्य दर्शन, सं. चारूचन्द्र पाण्डे
- 3- कुमाउनी भाषा , डॉ. केशव दत्त रूवाली
- 4- कुमाउनी हिन्दी शब्द कोश, डॉ. नारायण दत्त पालीवाल
- 5- कुमाऊँ का लोक साहित्य , डॉ. त्रिलोचन पाण्डे
- 6- कुमाउनी भाषा का अध्ययन, डॉ. भवानी दत्त उप्रेती

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कुमाउनी लोकगीतों की विशेषताएँ बताते हुए इसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
2. कुमाउनी लोकगीतों के विषयगत आधार पर विस्तृत वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।
3. लोकगीत क्या हैं ? कुमाउनी लोकगीतों की विविध विधाओं का वर्णन कीजिए।

इकाई 6 कुमाउनी लोकगाथाएँ - इतिहास स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 उद्देश्य
- 6.3 कुमाउनी लोकगाथाओं का इतिहास एवं स्वरूप
 - 6.3.1 कुमाउनी लोकगाथाएँ : अर्थ एवं स्वरूप
 - 6.3.2 कुमाउनी लोकगाथाएँ: ऐतिहासिक स्वरूप
 - 6.3.3 कुमाउनी लोकगाथाओं की विशेषताएँ
- 6.4 कुमाउनी लोकगाथाओं का भावपक्षीय वैशिष्ट्य
 - 6.4.1 कुमाउनी लोकगाथाओं में प्रकृति चित्रण
 - 6.4.2 कुमाउनी लोकगाथाओं में निहित स्थानीय तत्व
- 6.5 कुमाउनी लोकगाथाओं का वर्गीकरण
- 6.6 सारांश
- 6.7 महत्वपूर्ण शब्दावली
- 6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 6.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 6.10 सहायक पुस्तक सूची
- 6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

किसी भी राष्ट्र की अपनी लोकसंस्कृतिक पहचान होती है। ये पहचान उस राष्ट्र के लोकजीवन में जीवंत लोकसाहित्य के विविध पहलुओं द्वारा चरितार्थ होती है। आप देखेंगे कि सभ्यता और संस्कृति के आधारभूत तथ्य ही एक गौरवशाली अतीत से लोगों को परिचित कराते हैं। कुमाउनी लोकगाथाएँ भी यहाँ के ऐतिहासिक स्वर्णिम अतीत का परिचय प्राप्त कराती हैं। आदिकाल से प्रचलित लोककथात्मक आख्यानों की गवेषणा लोकगाथाओं के रूप में हमारे

समक्ष आती हैं। इस इकाई के प्रारंभ में कुमाउनी लोकगाथाओं का अर्थ प्रस्तुत करते हुए उसके इतिहास एवं स्वरूप पर चर्चा की जाएगी। कुमाउनी लोकगाथाओं की विशेषताओं का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उनके भावपक्षीय पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। स्थानीय तत्व तथा प्रकृति चित्रण से लोकगाथाएँ कितनी प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं। इस पर भी व्यापक दृष्टि डाली गई है। इकाई के उत्तरार्द्ध में कुमाउनी लोकगाथाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है।

लोकगाथाओं में निहित सांस्कृतिक तत्वों के समाजबद्ध अध्ययन के फलस्वरूप प्रस्तुत इकाई उपादेय समझी जा सकती है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

- (1) कुमाउनी लोकगाथाओं के इतिहास एवं स्वरूप को जान सकेंगे।
- (2) कुमाउनी लोकगाथाओं में निहित तत्कालीन पात्रों के चरित्रों की प्रासंगिकता को समझ सकेंगे।
- (3) लोकगाथाओं के विविध रूपों को वर्गीकरण के आधार पर समझ जाएंगे।
- (4) लोकगाथाओं की विशेषता के द्वारा कुमाउनी लोक मानस के अनुभूति पक्ष को जान पाएंगे।
- (5) यह निर्धारित कर सकेंगे कि लोकसाहित्य के विकास में कुमाउनी लोकगाथाएँ किस प्रकार सहायक सिद्ध हो सकती हैं?

6.3 कुमाउनी लोकगाथाओं का इतिहास एवं स्वरूप

लोकगाथा प्राचीन आख्यानमूलक गेय रचना है। प्रारंभ से लोकपरंपरा के रूप में प्रचलित लोकगाथाओं के रचयिता सर्वथा अज्ञात हैं। जिस प्रकार वाचिक परंपरा से लोकसाहित्य की कहावतें आदि विधाएँ समृद्ध हुई हैं, ठीक उसी प्रकार लोकगाथाओं में भी प्राचीन काल की घटनाक्रम तथा चरित्रों का सतत उल्लेख होता रहा है। इतिहास काल से प्रचलित इन गाथाओं को किसने रचा? कैसे रचा? इस संबंध में सटीक कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना जरूर है कि ये प्राचीन गाथाएँ या तो महाभारत रामायण कालीन परिदृश्य को प्रकट करती हैं, या फिर तत्कालीन परिस्थितियों में लोगों द्वारा दिन रात के अथक चिंतन द्वारा अपनी मनोभावना को प्रकट करने वाली वृत्ति के रूप में परिलक्षित होती हैं।

प्रो. डी.एस. पोखरिया ने लोकगाथाओं के संबंध में कहा है- 'लोक की भाषा अथवा बोली में पारंपरिक स्थानीय अथवा पुरा आख्यानमूलक गेय अभिव्यक्ति लोकगाथा है। इन गेय कथा प्रबंधों के लिए अंग्रेजी के फोक एपिक या बैलेड शब्द के पर्याय के रूप में हिन्दी में लोकगाथा शब्द का प्रयोग होता है। लोकगाथा का रचनाकार अज्ञात होता है। इसमें प्रामाणिक मूलपाठ की कमी होती है। संगीत और नृत्य का समावेश होता है। स्थानीयता की सुवास होती है। अलंकृत शैली का अभाव होता है। कथानक बड़ा होता है टेक पदों की आवृत्ति की बहुलता होती है। रचनाकार के व्यक्तित्व तथा उपदेशात्मकता का अभाव होता है। यह मौखिक रूप में कंठानुकंठ परंपरित होती है।

चूंकि यहां हम देखते हैं कि लोकगाथाओं के रचनाकार अज्ञात हैं अतः इतिहास काल क्रम को तय करना असंभव सा प्रतीत होता है। इतना अवश्य पाया जा सकता है कि इन लोकगाथाओं में निहित पौराणिक आख्यान अपने अपने समय का उल्लेख करते हैं। कुमाउनी में पौराणिक धार्मिक, वीरतापूर्ण, प्रेम परक तथा ऐतिहासिक लोकगाथाओं की प्रचलित अवस्था के अनुसार ही हम उनके स्वरूप इतिहास का मोटा अनुमान लगा पाते हैं।

कुमाउनी लोकगाथाओं में मालूसाई, आठूँ, रितुरैण, ठुलखेत, घणेली, भड़ा आदि गाथाओं के समान कई गाथाएं प्रचलित हैं। हुड़कीबौल में भी लोकगाथा का गायन किया जाता है। संदर्भ कथा को आत्मसात करने वाली विधा के रूप में लोकगाथाएं एक अप्रतिम गेय आख्यान हैं, जो प्रारंभ से लेकर वर्तमान काल तक समाज को एक सरस भाव से आप्लावित करती रही है। कहीं-कहीं मालूसाही जैसी लोकगाथा प्रेमपरक मर्मभेदी कथा प्रसंग को प्रकट करती हैं, तो कहीं 'जागर' जैसी गाथा सैकड़ों छोटी-छोटी कथात्मक आख्यानों को गायन नृत्य द्वारा अभिव्यक्त करती है।

6.3.1 कुमाउनी लोकगाथाएँ : अर्थ एवं स्वरूप

कुमाउनी लोकगाथाओं को समझने से पूर्व गाथा शब्द का अर्थ जानना आवश्यक है। कुमाऊं की लोकगाथाओं पर शोधकार्य कर चुके डा. उर्वादत्त उपाध्याय का कहना है 'गाथा बड़ा ही प्राचीन शब्द है। ब्राह्मण ग्रंथों में गाथा शब्द का प्रयोग आख्यानों के लिए हुआ है। गाथा को प्राचीन प्राकृत आदि जन भाषाओं में 'गाथा' कहा गया है। जन साहित्य तथा प्राकृत भाषाओं में गाथा विधा इतनी प्रिय हुई है कि प्राचीन, पालि, मागधी तथा जैन प्राकृत भाषाओं में गाथा साहित्य अपनी समृद्धि के साथ विकसित हुआ।'

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (ना.प्र.स.) 16वां भाग की प्रस्तावना में लोकगाथा को पारिभाषित करते हुए लिखा है- 'लोकगाथा वह प्रबंधात्मक गीत है, जिसमें गेयता के साथ ही कथानक की प्रधानता हो।' प्रो. कीट्टीज ने गाथा के संबंध में कहा है कि बैलेड वह गीत है, जो कोई कथा कहता हो।

न्यू इंगलिश डिक्शनरी के प्रधान संपादक का अभिमत है- 'बैलेड वह स्फूर्तिदायक या उत्तेजनापूर्ण कविता है, जिसमें कोई लोकप्रिय आख्यान सजीव रीति से वर्णित हो।'

डॉ उर्वादत्त उपाध्याय ने उक्त परिभाषाओं के आलोक में लिखा है- "गाथा गेय तत्व से युक्त किसी लोकप्रिय आख्यान पर आधारित वह लोकप्रबंध काव्य है, जिसमें लोकजीवन की अनुभूतियां और अभिव्यक्तियों का सहज प्रयोग किया जाता है।

यहां आप देखेंगे कि कुमाउनी लोकगाथाओं में कुमाऊँ की विषम भौगोलिक स्थितियों के अनुरूप लोकमानस की अभिव्यक्ति जन-जन के जीवन को रससिक्त करती आई है। लोकगाथा अभिजात साहित्य की धरोहर नहीं है। पहाड़ के जनजीवन में स्वतः प्रस्फुटित आख्यान जब संस्कृति का अभिन्न अंग बनते गए, तब इन गाथाओं को जनजीवन ने उसी मौलिक रूप में अपनाया। इनकी मौखिक परंपरा लोकमानस का कुशल मनोरंजन एवं ज्ञान का प्रतिपादन करती आई है। लोकसाहित्य की समग्र विधाओं के अनुरूप लोकगाथाओं में चिरंतन सत्ता के प्रति एक रहस्य साधना का भाव भी दृष्टिगोचर होता है। समूचे कुमाऊँ प्रदेश में अलग-अलग भाषा बोलियों के क्षेत्र में गाथाएं गाई जाती हैं, किन्तु भाव प्रायः सब जगह एक सा रहता है।

डा. कृष्णानंद जोशी ने लोकगाथा को गद्य पद्यात्मक काव्य की कोटि में रखते हुए लिखा है- 'कुछ विद्वानों ने इस वर्ग को लोकगाथाएं नाम भी दिया है। इस वर्ग के सभी गीतों में अनेक स्थलों पर गद्य का भी प्रयोग किया गया है। गायक द्वारा यह गद्य स्थल भी विशेष लय से कहे जाते हैं, सामान्य गद्य की भांति नहीं। इन गाथाओं में मालूसाही 'प्रेम काव्य' कहा जाता है। वीरगाथा काव्य में जिन्हें कुमाउनी में भडौ (भटो-वीरों की गाथाएं) कहा जाता है। बफौल, सकराम कार्की, कुंजीपाल चंद बिखेपाल, दुलासाही, नागी भागीमल, पंचूद्योराल, भागद्यो आदि की गाथाएं भी इसी वर्ग की हैं। ऐतिहासिक घटनाओं से संबंधित गाथाओं तथा कत्यूरी और चंद राजाओं की गाथाओं- धामद्यो, समणद्यो तथा कत्यूरी और चंद राजाओं की गाथाओं- धामद्यो, समणद्यो, उदैचन्द्र, रतनचन्द्र भारतीचंद की ऐतिहासिक गाथाएं कहा जा सकता है। इनमें धार्मिक ऐतिहासिक वीरगाथा तथा प्रेमगाथा के तत्वों का समन्वय मिलता है। 'रमोला' में जिसे हम कुमाउनी का लोक महाकाव्य कह सकते हैं, इससे स्पष्ट होता है कि गाथाओं की उत्पत्ति के पीछे लोक ऐतिहासिक घटनाक्रम निहित है। इन चरित्रों एवं घटनाओं के संदर्भ गाथाओं की उत्पत्ति के मूल कहे जा सकते हैं।

6.3.2 कुमाउनी लोकगाथाएं : ऐतिहासिक स्वरूप

कुमाउनी लोकगाथाओं को लोक महाकाव्य के नाम से जाना जाता है। इनकी उत्पत्ति एवं प्रादुर्भाव के संबंध में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। इतिहास के दीर्घकालीन प्रवाह में ये प्राच्य आख्यान कुछ काल्पनिक चीजों तथा कुछ सत्य घटनाओं का समन्वित स्वरूप प्रदर्शित करती हैं। इतिहास काल क्रम के आधार पर निश्चित रूप से इन लोकगाथाओं को बांधना कठिन प्रतीत होता है किंतु, इतिहास काल की कथाओं के आख्यान इन विभिन्न प्रकार की गाथाओं में

देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि हम नंदा देवी की बैसी को देखें तो बैसी अर्थात् बाईस दिन के गायन का निरंतर क्रम हमें प्राप्त हो जाएगा।

लोकगाथाओं में प्रमुख रूप से परंपरागत, पौराणिक धार्मिक तथा वीरतापूर्ण आख्यान मिलते हैं। परंपरागत रूप से मालूसाही तथा रमौल की गाथा प्रचलित है। जागर नामक गाथा में पौराणिक कथाओं का सार मिलता है। कुमाऊं की जागर गाथाओं तथा कृषि संबंधी गाथा हुड़की बौल में यहां के पौराणिक तत्व सम्मिलित हैं।

इन गाथाओं में महाभारत तथा रामायण कालीन घटनाओं तथा चरित्रों का महिमामंडन गायन शैली द्वारा प्रकट किया जाता है। इनमें महाभारत, कृष्णजन्म, रामजन्म तथा वनगमन शिव शक्ति, चौबीस अवतारों सहित नागवंशीय परंपरा का समुद्घाटन हुआ है।

जागर में विभिन्न कालों में घटित हुई विशेष घटनाओं का उल्लेख करते हुए उन चरित्रों को आधार बनाया जाता है, जो आज के समय में भी तत्कालीन परिस्थितियों की स्मृति कराकर अवतार में परिणत हो जाते हैं। कुमाऊं के विभिन्न लोकदेवता इन गाथाओं में समाविष्ट हैं।

कुमाऊं के कत्यूरी चंद वंशीय शासकों का उल्लेख भी जागर में हुआ है। धामदेव, बिरमदेव तथा जियाराणी के जागर कत्यूरी राजाओं से संबंध रखते हैं। धामदेव तथा बिरमदेव को क्रूर एवं अत्याचारी शासकों के रूप में दर्शाया गया है। 'हरू' की जागर चंद वंश से संबंधित है। इसके अतिरिक्त इतिहास की वीरतापूर्ण गाथाओं, जिन्हे 'भड़ौ' कहा जाता है, में वीरोचित चरित्रों तथा उनके पराक्रम तथा रोमांच का प्रतिनिधित्व करती जनमानस को तत्कालीन शौर्यगाथा से परिचित कराती हैं। हुड़की बौल में राजा विरमा की गाथा को गायक बड़े सुरीले दीर्घ स्वर में गाता है। शेष कार्य करने वाली महिलाएँ उस गायन को सस्वर गाती हैं। जाति संबंधी गाथाओं में झकरूवा रौत, अजीत और कला भड़ारी, पचू घोरा, रतनुवा फड़त्याल, अजुवा बफौल, माधोसिंह, रिखोला के विस्तृत वृत्तान्त प्राप्त होते हैं। इनमें कुछ ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं तथा शेष को गाथाकारों ने अपने ढंग से स्वयं गढ़ लिया है।

रोमांचक गाथाओं में प्रेमख्यान मिलता है। ये गाथाएँ प्रेमपरक हैं। प्राचीन काल में किसी सुंदरी को प्राप्त करने के लिए लोग आपस में युद्ध करते थे। इस युद्ध में विजयी राजा या व्यक्ति उस वस्तु या सुंदरी को पाने का हकदार हो जाता था। इस श्रेणी के चरित्रों में रणवारौत, सिसाउ लली, आदि कुवाँरि, दिगौली माना, हरूहीत, सुरजू कुवंर और हंस कुवंर की गाथाओं के नाम प्रमुख हैं। इनका गायन वीररसपूर्ण होता है, जो भड़ौ में स्पष्ट दिखाई देता है। अतः आप समझ सकते हैं कि प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक विभिन्न प्रकार की लोकगाथाओं में इतिहासकालीन चरित्रों तथा घटनाओं का उल्लेख एक समान रूप से किया गया है। मूलकथा का भाव समूचे कुमाऊं क्षेत्र में लगभग एक समान दिखाई देता है।

6. 3. 3 कुमाउनी लोकगाथाओं की विशेषताएँ

कुमाउनी लोकगाथाएँ यहाँ की पैराणिक संस्कृति की संवाहक रही हैं। इन लोकगाथाओं के निर्माण के पीछे इतिहासपरक घटनाओं की विशेष भूमिका रही है। लोकमानस की भाव भूमि पर प्रचलित इन गाथाओं में आप प्रचीन काल की घटनाओं तथा चरित्रों का उल्लेख पाएँगे। कुमाऊँ क्षेत्र की विशेष पर्वतीय भौगोलिक संरचना, सभ्यता, संस्कृति तथा लोकजीवन की अनुभूति के लयात्मक संस्पर्श को हम इन गाथाओं के माध्यम से आत्मसात करते हैं। भाषा बोली के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों में इन गाथाओं की लय विलग हो सकती है, किन्तु भावात्मक सुन्दरता प्रायः एक सी है। कुमाउनी लोकगाथाएँ स्वयं में आख्यान का वैशिष्ट्य प्रकट करती हैं। आप कुमाउनी लोकगाथाओं की विशेषताओं को निम्नलिखित शीर्षकों के द्वारा समझ सकेंगे -

(1) **वाचिक परंपरा के मूल स्रोत:** - कुमाउनी लोकगाथाएँ मौखिक परंपरा के आधारभूत स्रोत हैं। इतिहास की दीर्घ कालीन परंपराओं से ये अनुभवजन्य ज्ञान की संचित राशि के रूप में व्याख्यायित होते रहे हैं। आप देख सकते हैं कि कई अनपढ़ गाथा गायक जो अपना नाम तक लिखना नहीं जानते, गाथाओं के मौखिक गायन में पारंगत होते हैं। ये गाथाकार कई दिन तथा रातों तक निरंतर बिना किसी बाधा के गाथा का वाचन करते हैं। उसे लयबद्ध ढंग से गाते हैं। वाचिक परंपरा में गाथाकारों की अभिव्यक्ति अनूठी होती है। स्वरों के आरोही अवरोही तथा हाव भाव को गाथाकार बड़ी रोचकता के साथ श्रोताओं के समक्ष रखते हैं। इससे प्रतीत होता है कि मौखिक परंपरा में गाथा एक मौलिक अभिव्यक्ति है, जो बिना किसी उद्देश्य तथा तर्क के अनुभूत ज्ञान की रूपरेखा को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है।

(2) **सुदीर्घ कथानक की प्रधानता:-** कुमाउनी लोकगाथाओं के कथानक इतने लम्बे होते हैं कि एक गाथा एक पुस्तक के रूप में लिखी जा सकती है। मौखिक परंपरा में प्रचलित इन गाथाओं के मूल पाठ के लिए कोई निश्चित प्रतिबद्धता नहीं है। जीवन जीने की कला के रूप में बुजुर्गों द्वारा लम्बे कथानक वाली गाथाएँ गायी जाती रही हैं। राजुला मालूसाही की गाथा एक सुदीर्घ कथानक वाली गाथा है। इसमें गद्य भाग को भी गाया जाता है तथा पद्य भाग को भी। इन गाथाओं में संवादमूलकता बनी रहती है। नाटकीय अंदाज में अलग अलग चरित्रों द्वारा उच्चरित संवादों को शामिल करने के कारण इन गाथाओं की अन्तर्वस्तु सुदीर्घ हो गई है। कथानक का बड़ा या छोटा होना गाथाओं के लिए कोई प्रभावकारी नहीं है। सार्थक संवादों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रसंग भी गाथाओं में अकारण जुड़े प्रतीत होते हैं। मूल एवं प्रामाणिक पाठ के अभाव में ही गाथाओं का कथानक विस्तृत बन पड़ा है। आप समझ सकते हैं कि रमौल, मालूसाही तथा जागर आदि सुदीर्घ गाथाओं के गायन में गाथाकार कितना अधिक समय लेते हैं। इनके गायन में लगे समय के सापेक्ष ध्वन्यालेखन में और अधिक समय खर्च होता है।

(3) **रचयिता अथवा सृजनकर्ता का अज्ञात होना:** - कुमाउनी लोकसाहित्य की वाचिक परंपरा में परंपरित कई विधाओं के रचनाकारों का कुछ पता नहीं है। इन गाथाओं के मूल जन्मदाता कौन थे ? किस व्यक्ति ने इन गाथाओं को सर्वप्रथम गाना शुरू किया ? इस संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता। कुमाउनी मुहावरे तथा कहावतों के संबंध में भी यही बात सामने आती है कि इन सूक्तियों एवं कहावतों के निर्माणकर्ता या रचयिता कौन थे ? लोकगाथाओं का जनमानस में प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ? इस संबंध में भी ठीक ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। ये लोकगाथाएँ अपनी मौलिकता के साथ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती आई हैं।

डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय ने हडसन के मत का संदर्भ ग्रहण करते हुए अलंकृत काव्य तथा संवर्धित काव्य के बारे में बताते हुए लिखा है कि लोकगाथा संवर्धित काव्य का रूप है। मूल में जिसका कोई कवि रहा होगा, किन्तु विकास के साथ साथ अनेक लोक कवि एवं गायकों द्वारा उसकी वस्तु में वृद्धि की गई होगी। इसी कारण उसमें परिवर्तन भी स्वाभाविक रूप में आ गया अतः आप समझ पायेंगे कि रचनाकारों के अज्ञात होने के बावजूद इतिहास काल से अद्यतन इन गाथाओं का स्वरूप जीवन्त है।

(4) **नैतिक प्रवचनों एवं उपदेशात्मकता का अभाव:-** कुमाउनी लोकगाथाएँ किसी कथाख्यान का आलंबन लेकर सीधे प्रवाहित होती हैं। इनमें नैतिकता तथा जीवन के लिए जाने वाले उपदेशों का नितान्त अभाव है। इससे प्रतीत होता है कि ये गाथाएँ जब निर्मित हुई होंगी, तब के समाज में कोई ऐसी विभीषिका नहीं होगी, जो गाथाओं को प्रभावित कर सके। गाथाएँ अपने कथाभाव को लय के साथ अभिव्यक्त करती हुई आगे बढ़ती हैं। इसमें जीवन जीने के लिए जाने वाले उपदेशों का सर्वथा अभाव है।

(5.) **संगीत तथा नृत्य का अप्रतिम साहचर्य:-** कुमाउनी लोकगाथाओं में संगीत और नृत्य का अनूठा साहचर्य है। जागर गाथा को वाद्य यंत्रों के माध्यम से गाया जाता है, घर में लगने वाली जागर में हुड़का तथा कांस्य की थाली को बजाने का विधान है। जबकि मंदिरों या धूनी की जागर बैसी इत्यादि में ढोल दमाऊँ बजाकर देवताओं का आह्वान किया जाता है। कुमाऊँ में कृषि कार्यों को द्रुत गति से सम्पन्न कराने के लिए हुड़कीबौल का प्रचलन है। इसमें भी बौल गायक हुड़के की थाप पर किसी प्राचीन गाथा का गायन करता है। इन गाथाओं में छंद की महत्ता उतनी नहीं समझी जाती। छंद विधान की कट्टरता को दरकिनार करते हुए लय और सुरताल पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

(6) **अतिमानवीय तथा अतिप्राकृतिक तत्वों से युक्त कथानक रुढ़ियाँ-** जीवन के यथार्थमय दृष्टिकोण को प्रतिपादित करने के बाद भी इन गाथाओं में अतिमानवीय प्रकृति का समावेश हुआ है। डा. गोविन्द चातक के अनुसार देव गाथाओं में इसका समावेश एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, किन्तु अन्य वर्गों की गाथाओं में उसका उपयोग एक बहुत बड़ी सीमा तक हुआ है। इसका कारण समाज में समय-समय पर प्रचलित अंधविश्वासों, अनुष्ठानों, मनःस्थितियों,

कथानक रूढ़ियों तथा लोकमानस की चिन्तन विधियों में निहित है। इस प्रकार अतिमानव तत्व उस आदिम सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों की देन है, जिससे लोकमानस प्रीलौजिकल विवेकपूर्ण होता है। वह अपने चिन्तन में कार्य कारण क्रम का तारतम्य अपने ढंग से स्थापित करता है। दूसरे अर्थ में वह अपने नियम को प्रतिपादित करने के लिए अतिमानवीय तथा अतिप्राकृतिक शक्तियों का आश्रय लेता है।

(7) **स्थानीय तत्वों का समावेश:-** कुमाउनी लोकगाथाओं में स्थानीय तत्वों का प्रचुरता से समावेश हुआ है। राजुला मालूसाही की गाथा में भोटांतिक जन समुदाय की स्थानीय विशेषता दिखाई देती है। उत्तरार्ध में बैराठ द्वाराहाट, कत्यूर दानपुर, भोटदेश की झांकी दिखाई देती है। मादोसिंह मलेथा की गाथा में गढ़वाल के मलेथा नामक जगह का उल्लेख हुआ है। इनमें स्थान विशेष की परंपरा का बाहुल्य है। लोक जीवन की कला संस्कृति तथा स्थानीय रीतिरिवाजों, रहन-सहन आदि के साहचर्य से गाथाओं का रूप निखरा है। स्थान विशेष के लोगों के द्वारा किए जाने वाले पूजा, धार्मिक अनुष्ठान, रीतियों का वर्णन कई गाथाओं में देखा जा सकता है। स्थानीय देवी देवताओं का वर्णन जागर गाथा में स्पष्ट रूप से हम पा सकते हैं। प्रेम तथा प्रणय की गाथाओं में भी स्थानीय जनता के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रतिफलन इन गाथाओं में हुआ है।

यहां उपर्युक्त विशेषताओं के आलोक में आप कह सकते हैं कि गाथाएं अपनी जमीन से जुड़ी हरेक प्राच्य आख्यान को समाविष्ट करती हैं समाज को दिशा निर्देश देने के पूर्वाग्रह को आप इन गाथाओं में नहीं पा सकेंगे, ये गाथाएं मानव सभ्यता के उस दौर में प्रस्फुटित हुई है जब लोकजीवन में कुछ रचने एवं गढ़ने का एक स्वच्छंद शौक विद्यमान था। इसीलिए कुमाउनी तथा गढ़वाली लोकगाथाओं में सूक्ष्म चिन्तन दृष्टि को छोड़ स्थूल मनोरंजक प्रवृत्ति स्पष्ट झलकती है। स्थानीय प्रकृति तथा वातावरण के अनुभूत स्वर लहरियों को गाथाकारों ने एक विशद् लयात्मक स्वरूप प्रदान किया, तब से ये गाथाएं अपने स्वतंत्र अस्तित्व के साथ अभिव्यक्त होती रही हैं।

बोध प्रश्न

क- सही विकल्प चुनिए

1. मालूसाही है-

- I. लोकसंगीत
- II. लोकगाथा
- III. लोकवार्ता
- IV. लोककथा

2. लोकगाथा को क्या कहा गया है?

- I. लोककथा

- II. लोकगीत
- III. लोकवाद्य
- IV. गद्य- पद्यात्मक काव्य

3. हुड़कीबौल का संबंध है-

- I. कृषि गाथा से
- II. जागर गाथा से
- III. प्रणय गाथा से
- IV. लोकवार्ता से

ख. निम्नलिखित में सत्य या असत्य छँटिए-

- 1- लोकगाथा कुमाऊँ तथा गढ़वाल दोनों मंडलों में प्रचलित है। (सत्य/असत्य)
- 2- जागर में केवल हुड़का नामक वाद्य यंत्र बजाया जाता है। (सत्य/असत्य)
- 3- लोकगाथा के रचयिता अज्ञात हैं। (सत्य/असत्य)
- 4- लोकगाथा में स्थानीय तत्वों का सर्वथा अभाव है। (सत्य/असत्य)
- ग- लोकगाथा से क्या तात्पर्य है। लोकगाथा के स्वरूप को समझाइए।
- घ- लोकगाथाओं में इतिहास कालीन घटनाओं तथा चरित्रों का उल्लेख किस प्रकार हुआ है, समझाइए।

6.4 कुमाउनी लोकगाथाओं का भावपक्षीय वैशिष्ट्य

कुमाउनी लोक परंपरा के द्वारा ही यहां की विविध लोक साहित्यिक विधाओं का जन्म हुआ है। प्रत्येक लोकजीवन की अपनी कुछ अलग भावपक्षीय विशेषताएं होती हैं। इन विशेषताओं का प्रभाव उस काल खंड में रचे गए लोकसाहित्य पर भी पड़ता है। डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय ने लोकगाथाओं के भावपक्ष संबंधी विशेषताओं पर लिखा है- 'यद्यपि ये विशेषताएं एकान्तिक रूप से केवल कुमाउनी साहित्य की विशेषताएं ही नहीं की जा सकती हैं। अर्थात् यह आवश्यक नहीं है कि ये विशेषताएं केवल कुमाऊँ के गाथा साहित्य के अतिरिक्त विश्व साहित्य में सुलभ ही न हो।' यहां के गाथाओं की विशेषताओं में भावपक्ष की प्रबलता है, जिन्हें अधोलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है-

(1) कुमाउनी गाथाकार कतिपय स्थानों पर भूतकाल की जगह भविष्यत काल का वर्णन करता है-

तेरी होली राणी

गाउली सौकेली

सुनपति सौका हो लौ

बड़ो अन्नी धन्नी

सुनपति शौका का

सनतान न होती

अर्थात् तेरी रानी गाँउली सौकेली होगी। सुनपति भोटिया बड़ा अन्नवान तथा धनवान होगा। सुनपति सौक की कोई संतान नहीं है।

(2) तुकबंदी के लिए प्रथम पंक्ति को निरर्थक रूप में जोड़ने का लक्षण प्रस्तुत है-

भरती भरली

दैण नौर दाथुली

वो नौर धरली

सांटी में को सूलो

झिट घड़ी जागी जावो

ऊंमी पकै लूलो (गंगनाथ गाथा)

अर्थात् भरती भरेगी। दाहिने कंधे की दराती बांये पर रखेगी, सांटी में का सूला। तनिक प्रतीक्षा करो, मैं ऊंमी पकाकर लाऊंगी।

(3) साहित्य जगत में कवियों द्वारा नायिका के रूप में सौन्दर्य का वर्णन 'दिने दिने सा ववृधे शुक्ल पक्षे यथा शशी' द्वारा किया जाता है। किन्तु राजुला मालूसाही गाथा में राजुला के शैशवकाल से यौवन तक का वर्णन गाथाकार ने अपने निजी ज्ञान के आधार पर किया है-

द्वियै दिन में हो छोरी चार दिन जसी

नावान बखत छोरी, छे महैणा कसी

म्हैणन में हई गैछ बरसन कसी

चैत की कैरूवा कसी वणण बगै छ

भदौ की भंगाल कसी बड़ण बैगे छ

पूस की पालड. कसी ओ छोरी रजुली

राजन की मुई जनमी देवातों की वैरी

ओ छोरी रजुली ऐसी जनमी रै छ (मालूसाही द्वितीय श्रुति)

(दो ही दिन में वह छोकरी चार दिन के समान हो गई है। नामकरण के समय छः मास की हो गई, महीनों में ही वर्षों के समान वृद्धि पा गई, चैत्र मास के कैरूवा के समान बढ़ने लगी हैं भदौ की भंगाल जैसी उगती गई। पूस मास के पालक जैसी हे रजुली, राजाओं को तू मूल नक्षत्रों के समान खटक रही है। इसका सौन्दर्य राजाओं के लिए चुनौती बन गया है। इसका सामना देवतागण स्वर्गवासी होने के कारण नहीं कर सकते।)

आपने पढ़ा कि किस प्रकार भावपक्षीय सुंदरता को गाथाओं में वर्णित किया जा सकता है। जीवन के मूल भाव को नेपथ्य में रखते हुए गाथाएं अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अनुसार चलती हैं।

6.4.1 कुमाउनी लोकगाथाओं में प्रकृति चित्रण

साहित्य की लगभग भावात्मक विधाओं में प्रकृति के नाना रूपों का चित्रण हुआ है। प्रकृति एक विराट विषय है। मनुष्य की प्रकृति कहने से भी यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि मानव मन की प्रकृति भी वाह्य प्रकृति की एक अनुकृति है। डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय लिखते हैं- 'जहां तक लोकगाथाओं में प्रकृति चित्रण का संबंध है। वहां भी प्रकृति के नानारूपात्मक चित्रणों का अभाव नहीं कहा जा सकता है। यद्यपि ये गाथाएं घटना प्रधान हैं, तथा वर्णन प्रधान हैं ये खंडकाव्य, इनकी रचना प्रकृति चित्रण के लक्ष्य से नहीं हुई है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इन गाथाओं में प्रकृति चित्रण का सर्वथा अभाव है। वायु में मिश्रित सुरभि को सूंघने तथा आंखों के आगे कुसुमित प्राकृतिक सुषमा से कौन मुख मोड़ सकता है कुमाऊँ का प्रदेश तो नियति नटी के विभिन्न वेशभूषाओं तथा अलंकरणों से सुसज्जित है तथा उसके नाना प्रकार के व्यापारों से मुखरित है।'

वैदिक कालीन अभिव्यक्ति से लेकर आज तक जितने भी लोक सम्मत विधाओं का निर्माण हुआ है। उनमें प्रकृति एक सार्थक आलंबन के रूप में वर्णित रही है। यहां हम कुछ लोकगाथाओं के अंशों में प्रकृति चित्रण का अध्ययन करेंगे।

मौलिक आलंबन के रूप में प्रकृति चित्रण:- राजुला मालूसाही गाथा में जब गंगा के गर्भ से राजुला का प्रादुर्भाव हुआ, तब तत्कालीन हिमालयी पर्वत प्रदेश की छटा निखर उठी। आप उस छटा की मनोरम झांकी प्रस्तुत अंश में देख सकते हैं-

हिमाल बादो फाटो री री री. पंचाचूली चांदी जस चमकी रौ
 नन्दा देवी की घुडि.टी री री री और तली खिसकण लागी रे
 गोरिंगंगा पाणी बड़ौ री री री उज्यालो चमकीलो है रौ

(मालूसाही प्रथम श्रुति)

अर्थात हिमालय के बादल फट गए हैं और पंचाचूली चांदी के समान चमक रहा है। नन्दादेवी के घूंघट को और नीचे खिसका रहा है। गौरी गंगा का पानी बढ़कर साफ और चमकीला हो गया है। गाथाकार ने एक अन्य स्थान पर गंगा के तट का प्रातःकालीन चित्र उभारते हुए कहा है-

चार पहर रात अब, खतम है गई हो
 गंगा का सुसाट नैरेण आब बड़ि गयो हो
 करकर ठंडी हवा ऊँछै सरसर जाड़ो लागो हो
 (हरू सैम की गाथा)

अर्थ रात्रि के चार पहर बीत चुके हैं। हे नारायण गंगा के पानी की कलकल ध्वनि अब बढ़ गई है। करकर करती हुई हवा आकर ठंडे का आभास करा रही है अर्थात जाड़ा होने लगा है। एक गाथा में छिपलाकोट जंगल की नैसर्गिक सुषमा के बारे में गाथाकार ने कहा है-

समुणी बीचा माजी, फल फूल बोट
 बीस अमिर्त दाख दाड़िम आम पापली चौरा
 कत्यूर शिलिंग कुन्जफूलो और फूली प्योली
 अर्थात सामने के बाग में फल और फूल के पेड़ है।

अमृत, विष दाख तथा दाड़िम के फल हैं। आम तथा पीपल के पेड़ों में चबूतरे का निर्माण हुआ है। कनेर शिलिंग कुञ्ज तथा प्योली के फूल खिले हैं।

प्रकृति का उद्दीपक रूप:- प्रकृति के उद्दीपक रूपों का वर्णन भी गाथाओं में हुआ है। नायक नायिका की मन स्थिति के अनुसार वेदना में उसे प्रकृति असुंदर लगती है तथा हर्षित क्षणों में वही प्रकृति नायक या नायिका के लिए वरदान सी साबित हो जाती है-

हिमाल की हवा क्या मीठी लगी रे

के धूरा हो राजू तेरि दीठि लागी रे

राजू का शोर या हवा ले मीलि रे

शौक्यूड़ा बगीचा मेरि राजू खिलि रे।

अर्थात् हिमालय की हवा में कितनी मीठी सुवास है। राजुला तेरी दृष्टि किस दिशा में लग रही हैं। क्या तू मेरे आगमन को नहीं देख रही हैं। राजुला के श्वास में यह घुली है इसी के द्वारा मिठास का अनुभव होता है। भोट प्रदेश में बगीचे में मेरी रजुली खिली है।’

विरहिणी राजुला की विरह व्यथा में स्थानीय पक्षी फाख्ता (घुघुत) का वर्णन आया है। राजुली के विरहाकुल मनोदशा पर उसे घुघुत की बोली भी असहनीय कष्ट दे रही है।

ए नी बासो घुघुती को रूमझूम

मेरी ईज सुणली को रूमझूम

काटी खांछ भागी गाड़ को सुसाट

छेड़ी खांछे भागी तेरी वाणी

(मालूसाही द्वितीय श्रुति)

(हे घुघुत! तुम घुर्र घुर्र कर आवाज मत निकालो कही तेरी मर्मस्पर्शी आवाज मेरी माँ सुन लेगी हे भाग्यवान पक्षी! नदी के बहने की ध्वनि को सुनकर मुझे बहुत कष्ट होता है। तेरी दुःखभरी वाणी मुझे काट खाने को आती है।)

अलंकारों के रूप में प्रकृति चित्रण- कुमाउनी लोकगाथाओं में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत विधान अलंकारों के माध्यम से प्रकट होता है। कहीं उपमाएं दी जाती हैं तो कही रूपक अतिशयोक्ति के रूप में वस्तुस्थिति का चित्रण किया जाता है। राजुला मालूसाही गाथा में अलंकृत शैली का प्रयोग द्रष्टव्य है-

कांस जसी बूड़ी गंगा रीरि रीरि कफुवा जसी फूली रै

कंठकारी जसी गंगा री री, सब दुःख भूली गै

(श्वेत जलधार वाली गंगा कफुवे की जैसी फूली है

ऐसा लगता है कि उसके गले से अनेक ग्रंथियां फूटकर दुखों को भुला रहे हैं।

इन गाथाओं में गाथाकार ने आशीर्वाद लेने के अर्थ में भी अलंकारों का प्रयोग किया है

यथा- दवा जसी जड़ी पाती जसी पीली

बांसा जसी घाड़ी जुग जुग रौओ

(अर्थात् दूब की जैसी जड़ पत्तियों जैसी वृद्धि तथा बांस के झुरमुट जैसा सघन विस्तार तुम्हारे जीवन में हो, यही कामना की जाती है)

प्रकृति के उपादानों का वर्णन:- लोकगाथाओं में प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन हुआ है। ध्यान से देखा जाए तो समग्र प्रकृति ही गाथाओं के मूल में अवस्थित है। नदी, नाले पशु पक्षी, पेड़ पौधे किसी न किसी उपादान के रूप में इन गाथाओं में वर्णित हैं। राजुला मालूसाही गाथा में जब भोट प्रदेश से राजुली बैराठ की तरफ प्रस्थान करती है, तब मार्ग में पड़ने वाली सदानीरा नदियों से वह संवाद करती हैं। सरयू के पावन संगम बागेश्वर में पहुंचकर वह बागनाथ जी का आशीर्वाद ग्रहण करती है और मार्ग में पड़ने वाली अन्य सहायक नदियों से भी अपने अमर सुहाग का वरदान मांगती है। चूंकि लोकगाथाओं का प्रणयन लोकमानस की भावभूमि पर हुआ है। अतः इन गाथाओं में मनुष्य की प्रकृति पौराणिक सन्दर्भों को रूपायित करती प्रतीत होती है। नागगाथा का उदाहरण दर्शनीय है-

अधराती हईरैछ, अन्यारी रात छ

अन्यारी जमुना को पाणी, अन्यारी छ ताल

(अर्थात् आधी रात का समय है घुप्प अंधेरा है, यमुना का पानी भी अंधियाला या काला है इसी कारण ताल भी अंधेरे से घिरा है।)

आप देख सकते हैं कि कुमाऊँ में बुरांश प्योली आदि के पुष्पों को सुंदरता के उपादानों के रूप में गाथाकारों ने प्रस्तुत किया है।

कतिपय गाथाओं में आप पायेंगे कि कफुवा न्यौली, घुघुता शेर आदि वन्य पशु पक्षियों को भी आलंबन के रूप में ग्रहण किया गया है। प्रकृति के रूपों को गाथाकार ने सरस ढंग से प्रस्तुत किया है इससे कुमाऊँ प्रदेश की सुरम्य प्राकृतिक सुंदरता का बोध आसानी से हो जाता है।

कुमाउनी लोकगाथाओं में निहित स्थानीय तत्व

स्थानीय तत्व को अंग्रेजी भाषा में local colour कहा जाता है। स्थान विशेष की विशेषता के कारण लोकसाहित्य की प्रत्येक विधा प्रभावशाली एवं रोचक होती है। किसी भी सर्पक का अपना एक लोक होता है। वह उस निजी लोक का निर्माता भी स्वयं होता है। लोक की प्रत्येक क्रिया अथवा प्रतिक्रिया सर्पक को प्रभावित करती है। इस लोकरंजक सृजन में कवि अपनी

अनुभूति को शब्द देते समय स्थान विशेष की वस्तुओं भावनाओं तथा परम्पराओं का बहुत ध्यान रखता है। यदि वह ध्यान न भी रखे तो भी उसकी काव्य में स्वतः समाविष्ट हो जाती है।

कुमाऊँ की लोकगाथाओं में आप समझ सकेंगे कि स्थान विशेष के लोक पारंपरिक आचार व्यवहार प्रकृतिपरक चीजें तथा प्रतिमानों की समिष्ट बड़ी सुरुचि के साथ गाथाकार ने गढ़ी हैं। डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय के शब्दों में -अतः कुमाऊँ प्रदेश के लोकगाथाओं में यहाँ का पूरा लोकजीवन अपनी स्थानीय संस्कृति सहित साकार तथा सजीव हो उठा है। कवि ने अपनी स्थानीय प्रकृति पशु, पक्षी तथा लोकजीवन के दैनिक व्यापारों का पूरा चित्रण किया है। यद्यपि

स्थानीय तत्व का यह रंग गाथाओं में सर्वत्र बिखरा है। कोई भी गाथा पढ़ी या सुनी जाए स्वतः ही उसमें यहाँ का स्थानीय रंग अपनी आभा लिए निखरने लगेगा।

पशु पक्षियों के वर्णन तथा उनकी गाथाओं से संबंधता को देखने से पता चलता है कि कुमाऊँ के धुर जंगलों में कोयल कफु का बोलना, घुघुत (फाख्ते) की घुर्र-घुर्र तथा न्यौली की मीठी सुरिली तान गाथाओं का प्रमुख आधार बने हैं। हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं को भी गाथाकारों ने गाथा के माध्यम से वर्णित किया है। नंदा देवी, पंचाचूली, छिपलाकेदार, त्रिशूली तथा अनेक ग्लेशियरों का वर्णन भी यत्र-तत्र दिखाई देता है। प्राकृतिक सदानीरा सरिताओं में प्रमुख काली गंगा, गौरी गंगा, सरयू रामगंगा के माध्यम से कुमाऊँ क्षेत्र की पतित पावनी नायिकाओं के चरित्र की उदात्त प्रभा का उद्घाटन किया गया है। कुमाऊँ के प्रसिद्ध शिवमंदिरों जागेश्वर धाम का वर्णन भी गाथा में इस प्रकार हुआ है-

जागेश्वर धुरा बुरुशि फुली रै

मौलि रैई बांजा फुली रै छ प्योली

(अर्थात् जागेश्वर के जंगलों में बुरांश को पुष्प खिले हैं, बांज के वृक्ष ने श्याम सी छवि धारण की है तथा पीले-पीले प्युंली के फूल खिल रहे हैं)

कहीं बुरुश नाम प्रसिद्ध पुष्प का वर्णन है, तो कहीं चैत्र मास में फूलने वाली पीलाभ प्युंली से नायिका के रूप सौन्दर्य को अभिव्यक्त किया जाता है। कहीं स्थानीय ताल पोखरों का वर्णन भी गाथाओं में आया है। कुमाऊँ में ग्रामीण क्षेत्रों में कम पानी वाले क्षेत्रों में तालाब से बनाए जाते हैं। गर्मियों में इन तालों में भैसों को स्नान कराया जाता है। इन पोखरों को भैसीखाल या भैसी पोखर के नाम से भी जाना जाता है। स्थानों के पौराणिक नामों का समावेश भी गाथाओं में हुआ है। भोटांतिक क्षेत्र को भोट बागेश्वर का क्षेत्र दानपुर तथा कत्यूर तथा द्वाराहाट का क्षेत्र बैराठ के रूप में गाथाकार ने वर्णित किया है। इसके अतिरिक्त जौलजीवी मेला, उत्तरायणी मेला, बग्वाल का वर्णन भी मिलता है। स्थानीय वस्त्राभूषण जिनमें बुलांकी गले की जंजीर, कानों के झुमके, पैरों के झांवर, तथा झर हाथों की धागुली, नाक की नथुली दस पाट का घाघरा, मखमली अंगिया, धोती

प्रमुख हैं, का भी समावेश लगभग स्थानीय गाथाओं में सभी में हुआ है। इस प्रकार आप समझ जाएंगे कि कुमाऊँ के स्थानीय मेले सांस्कृतिक तथा भौगोलिक परंपरा के सभी सूत्र गाथाओं के विशाल कथानक के आधार स्तंभ हैं।

बोधात्मक प्रश्न

क- बहुविकल्पीय प्रश्न

सही उत्तर का चयन कीजिए

1- लोकगाथाओं के रचयिता हैं-

- I. ज्ञात
- II. अज्ञात
- III. एक दर्जन
- IV. दस

2- कुमाउनी लोकगाथा में अभाव है-

- I. रचयिता का
- II. मूल पाठ का
- III. उपदेशों का
- IV. उपर्युक्त सभी का

3- कुमाउनी लोकगाथा के भावपक्ष में प्रमुख कौन सा है?

- I. प्रकृति वर्णन तथा स्थानीय तत्व
- II. गाथाकार का व्यक्तित्व
- III. अलंकार
- IV. कोई नहीं

ख- अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

1-कुमाउनी लोकगाथा में वर्णित किसी एक स्थानीय पक्षी का नाम बताइए ?

2- मालूसारी की नायिका/ प्रेमिका का नाम बताइए ?

3- नाक में पहने जाने वाले भोट प्रदेश के आभूषण का नाम क्या है?

4- कत्यूर क्षेत्र किस जनपद के अन्तर्गत आता है?

6.5 कुमाउनी लोकगाथाओं का वर्गीकरण

कुमाऊँ में प्रचलित लोकगाथाओं के अनेक रूप हमें प्राप्त होते हैं। इन गाथाओं में प्राचीन काल के विविध आख्यान निहित है। इन गाथाओं में आधुनिक काल की किसी कथा आख्यान को सम्मिलित नहीं किया गया है। कुछ गाथाओं की कथा बहुत विस्तृत हैं, तो कुछ गाथाएं संक्षिप्त भी है। यहां आप संक्षेप में गाथाओं के वर्गीकरण को समझ सकेंगे।

- (1) परंपरागत गाथाएं
- (2) पौराणिक गाथाएं
- (3) प्रेमपरक गाथाएं
- (4) धार्मिक गाथाएं
- (5) स्थानीय एवं वैदिक देवी देवताओं से संबंधित गाथाएं
- (6) वीर गाथाएं

परंपरागत गाथाओं में मालूसाही तथा रमौल की गाथाएं प्रसिद्ध है। मालूसाही की विस्तृत गाथा में राजुला मालूसाही का जातीय प्रेमाख्यान प्रदर्शित होता है। इसमें मध्यकालीन कुमाउनी संस्कृति के दर्शन होते हैं। कुछ विद्वान मालूसाही की गाथा को जातीय महाकाव्य के रूप में भी स्वीकारते है। कुमाऊँ के सीमान्त क्षेत्र जोहार से लेकर नैनीताल के चित्रशिला घाट तक का वर्णन इस गाथा में हुआ है।

दूसरी परंपरागत लोकगाथा रमौल के नाम से जानी जाती है। कुमाऊँ तथा गढ़वाल मंडल में प्रचलित इस गाथा में आप महाभारत कालीन चरित्रों एवं घटनाओं का वर्णन समझ सकते हैं।

पौराणिक गाथाओं में पुराण कालीन अनेक गाथाओं का सम्मिश्रण मिलता है। महाभारत काल के कृष्ण अर्जुन संवाद, कौरव पाण्डवों के मध्य हुए युद्ध के कारण तथा उनकी तत्कालीन प्रवृत्तियों को इसमें दर्शाया गया है। रामायण काल की रामचन्द्र जी एवं कृष्ण जी के अवतार संबंधी कथा का वर्णन भी प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त शिव पार्वती संवाद, कृष्ण जन्म की घटना, चौबीस अवतार तथा नागवंश की विशेषताओं को पौराणिक गाथाओं के रूप में जाना जाता है। राजुला मालूसाही की गाथा विशुद्ध रूप से प्रेमपरक गाथा है। जातिगत वैभिन्य के बावजूद भी दोनों के मिलन की एक अलौकिक कथा हमारे समक्ष आती है। धार्मिक गाथाओं के अन्तर्गत वे गाथाएं आती हैं, जिनके मूल में विशेष धार्मिक अनुष्ठान, पूजा पाठ की क्रियाएं सम्मिलित हैं। कुमाऊँ में जागर गाथा को धार्मिक गाथा कहा जाता है। यद्यपि कुछ विद्वानों का

इसके संबंध में अलग मत हैं। कुछ लोग जागर में महाभारत या रामायण काल की घटना की उपस्थिति के कारण इसे पौराणिक गाथा की कोटि में रखते हैं। किन्तु मूलतः पहाड़ की पूजा अनुष्ठान की विशेष छवि जागर गाथा में दिखाई देने के कारण इसे धार्मिक गाथा कहना उचित प्रतीत होता है। स्थानीय देवी देवताओं से संबंधित गाथाओं में नंदा का जागर, नंदा का नैनौल, सिदुवा बिदुवा की कथा, अजुवा बफौल आदि की गाथा सम्मिलित है। वीर गाथाओं में चंद, कत्यूरी वंशजों की गाथाएं गायी जाती हैं। राजा बिरमा की कत्यूरी गाथा भी एक प्रभावशाली वीर गाथा है। चंद राजाओं, उदैचन्द, रतन चंद, विक्रमचंद की गाथाओं में तत्कालीन वीरतापूर्ण आख्यान समाविष्ट हैं।

बोध प्रश्न

क- सही विकल्प छॉटिए

1. प्रेमपरक आख्यान किस गाथा में मिलते है-

- I. जागर गाथा
- II. धार्मिक गाथा
- III. मालूसाही गाथा
- IV. रमौल गाथा

2. नंदा का नैनौल है-

- I. देवी देवताओं संबंधी गाथा
- II. प्रेम गाथा
- III. वीर गाथा
- IV. परंपरागत गाथा

3. रमौल है-

- I. परंपरागत गाथा
- II. वीर गाथा
- III. धार्मिक गाथा
- IV. प्रेमाख्यान

ख - निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए

1 पौराणिक गाथाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए

2 धार्मिक गाथाओं से क्या तात्पर्य है?

3 वीरगाथाओं की विशेषताएं बताइए।

6.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप

- कुमाउनी लोकगाथाओं का अर्थ एवं स्वरूप समझ चुके होंगे
- कुमाउनी लोकगाथाओं के ऐतिहासिक स्वरूप को जान गए होंगे
- लोकगाथाओं की भाव भावपक्षीय सुंदरता का अध्ययन कर चुके होंगे।
- लोकगाथाओं के वर्गीकरण से विभिन्न प्रकार की

प्रचलित गाथाओं के बारे में ज्ञात प्राप्त कर चुके होंगे।

6.7 शब्दावली

उपादेय	-	उपयोगी
भड़ौ	-	भड़ौ अर्थात् भटों एक प्रकार की वीर गाथा
जागर	-	जागरण कुमाऊँ की दीर्घ गाथा
नैनौल	-	नंदा देवी का जागरण गायन
विभीषिका	-	अशांति, अराजकता
भोट प्रदेश	-	भोटिया जनजाति का क्षेत्र जोहार, मुनस्यार
आख्यान	-	प्राचीन काल का भाव या सूत्र

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

इकाई 6.3 के उत्तर

- क- 1- लोकगाथा
2- गद्य-पद्यात्मक काव्य

3- कृषि गाथा से

ख-

1-सत्य

2. असत्य

3. सत्य

4. असत्य

6.4 के उत्तर

क-

1- अज्ञात

2- रचयिता का

3- प्रकृति वर्णन तथा स्थानीय तत्त्व

ख-

1- घुघुत

2- राजुली

3- बुलौंकी

4- बागेश्वर

6.5 के उत्तर

क-

1- मालूसाही गाथा

2- देवी देवताओं संबंधी गाथा

3 – परम्परागत गाथा

6.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1- उपाध्याय डा. उर्वादत्त कुमाऊँ की लोकगाथाओं का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन , पृ0 34 व 35
2. पूर्वोक्त, पृ0 67

3. पूर्वोक्त पृ0 63-64
4. पूर्वोक्त पृ0 391-394
- 5- पूर्वोक्त पृ0- 423-431
6. पाण्डे, त्रिलोचन, कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य पृ0 229
7. पूर्वोक्त पृ0 234
8. पूर्वोक्त, कुमाऊँ का लोक साहित्य पृ0 160-161
- 9- पोखरिया, देवसिंह, लोकसंस्कृति के विविध आयाम पृ0 57-58

6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. कुमाऊँ की लोकगाथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ उर्वादत्त उपाध्याय, प्रकाश बुक डिपो बरेली
2. कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य, डा.त्रिलोचन पाण्डे,उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ
3. लोकसंस्कृति के विविध आयाम, डॉ.देवसिंह पोखरिया, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो अल्मोड़ा
4. कुमाउनी भाषा और संस्कृति, डॉ केशवदत्त रूवाली
5. भारतीय लोकसंस्कृति का संदर्भ, मध्य हिमालय डॉ गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन दरियागंज दिल्ली ।

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कुमाउनी लोकगाथाओं के स्वरूप एवं इतिहास की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. लोकगाथाओं की विशेषताएं बताते हुए उनका वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।
3. जागर गाथा क्या है, जागर गाथाओं में गाए जाने वाली लोकगाथाओं का वर्णन कीजिए।

इकाई 7 कुमाउनी लोककथाएं : इतिहास स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 कुमाउनी लोककथाएं : इतिहास एवं स्वरूप

7.3.1 कुमाउनी लोककथाओं का इतिहास

7.3.2 कुमाउनी लोककथाओं की विशेषताएं एवं महत्त्व

7.4 कुमाउनी लोककथाओं का परिचय

7.5 कुमाउनी लोककथाओं का वर्गीकरण

7.6 सारांश

7.7 पारिभाषिक शब्दावली

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.10 सहायक ग्रंथ सूची

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

कुमाउनी लोककथाएं कुमाऊँ के जनमानस की साहित्यिक उपज हैं। मनोरंजन और ज्ञान के अभाव की पूर्ति करने के लिए इन लोककथाओं का सृजन किया गया होगा। इतिहास काल से प्रचलित लोककथाओं में सामाजिक एवं धार्मिक जीवन की परंपरागत अभिवृत्ति देखने को मिलती है। इकाई के पूर्वार्द्ध में आप लोककथाओं के प्रादुर्भाव एवं उनके ऐतिहासिक स्वरूप को समझ सकेंगे। लोककथा के निर्माण के पीछे लोकमनोविज्ञान का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यहां हम लोककथाओं की प्रवृत्तियों तथा उनके सामाजिक महत्त्व का अध्ययन भी करेंगे। इकाई के उत्तरार्द्ध में चुनी हुई लोककथाओं का परिचय तथा उनका वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत इकाई को समग्र कुमाउनी लोकसाहित्य की रीढ़ कहना समीचीन प्रतीत होता है। क्योंकि लोकगीत तथा लोकगाथाओं में भी तत्कालीन सामाजिक परिदृश्य तथा उनके कथामूलक आख्यान किसी न किसी रूप में समाहित रहे हैं।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप

- लोककथा द्वारा इतिहासपरक देशकाल एवं वातावरण को समझ सकेंगे।
- कुमाउनी समाज के अभिव्यक्ति कौशल का पता लगा पाएंगे।
- कुमाउनी लोककथाओं द्वारा समाज के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं पर दृष्टि डाल सकेंगे।
- यह जान सकेंगे कि परंपरा की जीवंतता में लोककथाओं का कितना बड़ा योगदान है।
- कुमाऊँ के स्थानीय रीति रिवाजों तथा भौगोलिक परिस्थिति को समझ सकेंगे।

7.3 कुमाउनी लोककथाएं : इतिहास एवं स्वरूप

कुमाउनी लोककथाओं को समझने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम कथा के अर्थ को समझें। कुमाऊँ तथा गढ़वाल में कथा के लिए कथा, काथ, वार्ता तथा कानी शब्दों का प्रयोग होता रहा है। देवी देवताओं के पौराणिक आख्यान को वार्ता कहा गया है। कानी (कहानी) गढ़वाली भाषा में यथार्थ जीवन की घटनाओं का दस्तावेज माना जाता है, जबकि कथा को मनगढ़न्त काल्पनिक विधा के रूप में पारिभाषित किया गया है। डॉ गोविन्द चातक के अनुसार- कथा, कहानी और वार्ता सुनने सुनाने के दो रूप होते हैं। एक तो कथाएं की जाती हैं। जैसे सत्यनारायण भागवत और पुराणों की कथाएं। इनके पीछे धार्मिक प्रेरणा होती है और ये प्रायः अनुष्ठान के रूप में ही की जाती हैं इन कथाओं का प्रसंग से सीधा संबंध नहीं। क्योंकि वे पढ़कर सुनाई जाती है और श्रोताओं का उनके प्रति कथा का भाव नहीं रहता। वह उनके लिए एक धार्मिक कर्तव्य सा होता है। इसी प्रकार की वार्तायें भी केवल धार्मिक समारोहों के अवसर पर सुनाई जाती हैं और उनका आधार भी कोई पौराणिक आख्यान ही होता है। वास्तविक कथाएं वे होती हैं, जिन्हें बूढ़े और बच्चे विश्राम और कार्य के क्षणों में मनोरंजन के लिए सुनाया करते हैं।

कुमाउनी लोककथाओं में भी कहानी या कथा का कोई यथार्थ या वास्तविक भाव उतना नहीं दिखाई देता। कुछ पौराणिक लोककथाओं जैसे महाभारत, रामायण आदि की कथाओं में

वास्तविक जीवन के भाव बोध दृष्टिगत होते हैं। शेष कथाएं कल्पना या गल्प पर ही आधारित हैं।

कुमाउनी लोकसाहित्य के कुशल अध्येता डा. त्रिलोचन पाण्डे ने कुमाउनी लोककथाओं को दो भागों में बांटा है-लोकगाथाएं तथा दन्त कथाएं। हम अपने दृष्टिकोण से इन्हें अलग-अलग कोटि में रखेंगे। यद्यपि कुछ लोकगाथाओं तथा लोककथाओं की कथावस्तु लगभग एक समान हैं फिर भी इनका वास्तविक स्वरूप भिन्न है। दन्तकथाओं में हम तांत्रिकों, पुजारियों, भूतप्रेतों, देवों दानवों, पशु पक्षियों, वनस्पतियों, वृक्षों नदी, नालों तथा साधु संतों आदि की कथाओं को सम्मिलित करते हैं। डॉ. कृष्णानंद जोशी ने विषयवस्तु को विभाजन का आधार मानते हुए कुमाऊँ की लोककथाओं को अतिमानवीय, मानवीय संबंधों और लोक विश्वास के दायरे में रखा है। डॉ. पुष्पलता भट्ट ने लोककथाओं को बारह वर्गों में वर्गीकृत किया, जो हमारे वर्गीकरण से लगभग मेल खाता है। परन्तु गीत कथाएं तथा तन्त्र मंत्र संबंधी कथाएं अलग वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ कह पाना संभव नहीं है।

कुमाउनी में आरंभ से चली आ रही लोककथाओं के निर्माता सर्वथा अज्ञात हैं। ये कथाएं पीढ़ी दर पीढ़ी बुजुर्गों को सुनकर अपनी अगली पीढ़ी को मौखिक रूप से हस्तांतरित करते रहते हैं। कुमाउनी सभ्यता तथा संस्कृति के विकास क्रम में ही इन लोककथाओं का सृजन हुआ है। ये काल्पनिक और वास्तविक होने के साथ-साथ जीवन्त हैं तथा सत्यानुभूति के धरातल पर पाठकों को दिशा निर्देश तथा उनका मनोरंजन करने में भी पूर्णतः समर्थ हैं।

7.3.1 कुमाउनी लोक कथाओं का इतिहास

कुमाउनी लोककथाओं का इतिहास काल क्रम निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि ये कथाएं प्रारंभ से परंपरा के रूप में विकसित हुई हैं। पिछले अध्यायों में आपने पढ़ा होगा कि लोकसाहित्य के प्रादुर्भाव के संबंध में प्रायः यही कहा जाता रहा है कि इन विधाओं के रचनाकार अज्ञात एवं दुर्लभ हैं। लोककथा भी लोकगाथा, लोकगीत तथा कहावतों की तरह एक वाचिक परंपरा की विधा है जिसका विकास जनमानस की संवेदी उर्वरा भावभूमि पर हुआ है। कुमाउनी लिखित साहित्य के अध्ययन के उपरांत आप देखेंगे कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ये लोककथाएं और कहावतें लिखित रूप में सामने आईं। 19वीं शताब्दी से लिखित साहित्य का प्रारंभ माना जाता है। इस सदी में काव्य रचनाओं के माध्यम से ही लिखित साहित्य परंपरा की शुरुआत हुई। जीवनचंद्र जोशी (1901) तथा चन्द्रलाल वर्मा चौधरी (1910-1966) को कुमाउनी कथा साहित्य एवं कहावतों का प्रणेता माना जाता है। इससे पूर्व 19वीं शताब्दी में पौराणिक संस्कृत साहित्य का अनुवाद कार्य भी हमारे समक्ष आता है।

जहां तक कुमाउनी लोककथाओं का प्रश्न है ये रचयिताओं का परिचय बिना सतत प्रवहमान हैं, डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय ने सम्पूर्ण लोकसाहित्य के निर्माण के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है- 'लोक संस्कृति एवं लोकजीवन की परंपरा का साक्षात् रूप से निर्वाह

करने वाली है, यहां के लोकसाहित्य के प्रबंध काव्य जिन्हें गाथा कहा जाता है। सारा लोकसाहित्य परंपरागत रूप से श्रुति परंपरा द्वारा संचालित होता आया है तथा इसके रचयिता एकदम अज्ञात हैं। उन्होंने आगे लिखा है कि श्री ओकले और श्री तारादत्त गैरोला के प्रयत्नों से कुमाऊँ की अनेक लोककथाएं आदि प्रकाश में आईं।

डॉ कृष्णानंद जोशी के अनुसार-‘लोकसाहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग लोककथाएं हैं। यह लोककथाएं अंचल विशेष के जन जीवन, सामाजिक रीति रिवाज परंपराओं और लोकविश्वासों पर यथेष्ट प्रकाश डालती हैं। इन कथाओं में कुछ अतिमानवीय शक्तियों-भूतप्रेत राक्षस, दैत्य, परियों से मनुष्य विशेष के संघर्ष पर आधारित हैं ऐसी कथाओं में बहुधा मानवीय शक्तियों की अतिमानवीय शक्तियों पर विजय दर्शायी गई है। विभिन्न लोकविश्वासों की सुन्दर अभिव्यक्ति इन कथाओं में मिलती है। दूसरे वर्ग में वे कथाएं सम्मिलित की जा सकती हैं जिनमें पंचतंत्र की कथाओं और ईसप की कहानियों की भांति पशु-पक्षियों के संसार को इस भांति वर्णित किया गया है कि बहुधा कहानी के पशु पात्र मानव स्वभाव की कोई दुर्बलता, वर्ग विशेष की चारित्रिक विशेषता या सामाजिक जीवन के किसी वैषम्य की ओर इंगित करते हैं। स्थानीय जनमानस की अभिव्यक्ति कौशल की ओर से कथाएं सीधा संकेत करती हैं। इन कथाओं का निर्माण वैदिक कालीन साहित्य एवं संस्कृति के आधार पर हुआ है। इतिहास का आधार महाभारत तथा रामायण काल की घटनाओं एवं उनमें शामिल चरित्रों को भी माना गया है। डॉ गोविन्द चातक ने लिखा है- ‘गढ़वाल और कुमाऊँ में दो प्रकार के देवी देवता मिलते हैं। एक स्थानीय और दूसरे वे जिन्हें सामान्यतः सम्पूर्ण भारतवर्ष में माना जाता है। हिन्दू देवीदेवताओं का पौराणिक सनातन व्यक्तित्व है। अतः कुमाऊँ और गढ़वाल में भी उनके संबंध में उसी प्रकार की कथाएं प्रचलित हैं जैसी अन्यत्र हैं। किन्तु इसके अतिरिक्त भी उनके संबंध में ऐसी कथाएं स्थानीय रूप से चुनी गई हैं जिनके सूत्र अन्यत्र नहीं मिलते। उदाहरण के लिए श्रीकृष्ण की रसिकता से सम्बद्ध कुसुमा कोलिन सुजू की सुनारी, गंगू रमौला, सिदुवा ब्रह्मकुँवर चन्द्रावली रूकमणी आदि के प्रसंग स्थानीय और मौलिक हैं इसी प्रकार पांडुवों की कथाएं जिन्हें पांडवार्ता (पांडव वार्ता) कहा जाता है कुछ महाभारत के अनुकूल चलती है। किन्तु कई उससे भिन्न रूप में भी मिलती है। इसी प्रकार यहां की लोककथाओं में शिव पार्वती अनेक बार पालों के रूप में आते हैं इसके अतिरिक्त उनसे संबंधित कई कथाएं स्वतंत्र रूप से भी मिलती हैं। शिव और शक्ति का क्षेत्र होने के नाते जागेश्वर, बागेश्वर, पाताल भुवनेश्वर, सोमेश्वर नन्दादेवी, त्रिशूल गोपेश्वर, तुंगनाथ कालीमठ, कमलेश्वर सुरकंडा, चंद्रवदनी, रूद्रप्रयाग, उत्तरकाशी आदि कई स्थान उनकी श्रुतियों से संबंधित हैं। राम कथा को भी स्थानीय रंगों से अनुरंजित किया गया है।

स्थानीय देवी देवताओं गणनाथ, मलयनाथ, भूमिया हरू,सैम, भैरव, कलुवा, सिडुवा बिदुवा, ग्वल्ल, परी आंचरी गड़देवी सहित अनेकानेक क्षेत्रीय देवी देवताओं के जीवन पर आधारित अनेक लोककथाएं कुमाऊँ क्षेत्र में प्रचलित हैं। प्रो. देवसिंह पोखरिया ने लोककथाओं को लोकभाषा या बोली में परंपरा से चली आ रही वाचिक अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार

किया है। उन्होंने कुमाउनी लोककथाओं के इतिहास को बताते हुए लिखा है- भारतीय लोककथाओं की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। यदि भारत की सारी लोककथाओं को संगृहीत किया जाए, तो इनकी संख्या अनंत होगी। कथा साहित्य की दृष्टि से यह विश्व का अद्भुत ग्रन्थ होगा। भारत को विश्व कथा साहित्य का मूल स्रोत होने का गौरव प्राप्त है, वैदिक संहिताएं ब्राह्मण ग्रंथ उपनिषद्, पुराण ग्रंथों की कथाएं, वृहत्कथा, कथासरित्सागर, पंचतंत्र, हितोपदेश, वैताल पंचविंशति का सिंहासन द्वात्रिंशिका तथा जातक कथाएं भारतीय कथा साहित्य के अमर ग्रंथ हैं जो लोककथाओं की भूमि पर ही पुष्पित पल्लवित और सुरभित हैं। पोखरिया के अभिमत के आलोक में हम कह सकते हैं कि प्रारंभ से अविराम गति से चली आ रही लोककथाओं ने वैदिक साहित्य, लौकिक साहित्य, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंशकालीन सभ्यता एवं संस्कृति का अनुशीलन करते हुए एक परंपरा विकसित की है। इस परंपरा का मूल लक्ष्य लौकिक जीवन को उस आनंद से अभिभूत करना था, जो मानवीय सोच के बिल्कुल करीब होती है। युगीन परिदृश्य तथा नैतिकतापूर्ण आख्यानों को लोककथाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया।

यहां हम कह सकते हैं कि लोककथा एक वाचिक परंपरा की अभिव्यक्ति है, जिसे इतिहास काल से ही स्वच्छंद ढंग से आत्मसात किया गया। कुमाउनी लोक कथाओं में पौराणिक आख्यान, समाज का बिम्ब तथा नियति की विशेषता देखी जा सकती है। प्रकृति को आधार मानकर लिखी गई लोककथाओं में मानव मनोविज्ञान के तत्व साफ झलकते हैं। इन कथाओं की उत्पत्ति के संबंध में मनुष्य की अन्तर्विवेकी तथा लोकरंजन की मानस वृत्ति छिपी है। अनुभूति की मनोरंजक अभिव्यक्ति संपूर्ण समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हुई। यही इन लोककथाओं का ऐतिहासिक स्वरूप है।

7.3.2 कुमाउनी लोककथाओं की विशेषताएं तथा महत्त्व :-

कुमाउनी लोककथाएं कुमाउनी साहित्य की अनूठी धरोहर है। लोकसाहित्य में पायी जाने वाली विशेषताएं लोककथा की विशेषताओं के समान हैं। लोक जीवन की जीवन शैली तथा क्रियाकलापों को भी लोककथाओं में स्थान मिला है। ये लोक कथाएं सामाजिक मूल्यों की स्थापना करने में भी सहायक सिद्ध हुई है। नीतिगत निर्णय तथा विश्व मंगल की कामना इन कुमाउनी लोककथाओं में सर्वत्र पायी जाती है। कुमाउनी लोकसाहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा होने के कारण वर्तमान में भी इनके प्रति लोगों की रुचि यथावत है। कुमाउनी लोककथाओं की विशेषताओं को यहां कुछ शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जाता है-

1. प्राचीन आख्यानों से परिपूर्ण- कुमाउनी लोककथाएं प्राचीन काल की परंपरा का प्रकाशन करती है। वैदिक युग सहित रामायण तथा माहाभारतकालीन घटनाओं का उल्लेख इन कथाओं में हुआ है। जिन आप्त चरित्रों को हम जीवन में उपादेय समझते हैं। उन चरित्रों का उल्लेख कई लोककथाओं में हुआ है। इन लोककथाओं में प्राचीन काल की लोकगाथाओं के आख्यान भी कहीं कहीं दिखाई देते हैं। मूलतः लोककथा तथा लोकगाथा कथा आख्यान की दृष्टि से एक ही

हैं। अन्तर सिर्फ इतना है कि लोकगाथाओं का कथानक बहुत विस्तृत होता है, जबकि कहानी या लोककथा का कलेवर उत्कर्ष के सापेक्ष कुछ बड़ा होता है। राम, कृष्ण, अर्जुन, आदि के द्वारा प्रजाहित किए गए सत्कार्यों को लोककथाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। वृहत्कथा, मृच्छकटिकम्, कथासरित्सागर आदि में वर्णित कथा लोककथाओं के समान विशेषताएँ प्रदर्शित करती हैं।

2. लोकमंगल की कामना - लोककथाएँ लोकमानस की सच्ची बानगी है। लोकमानस से उद्भूत इन कथाओं में जन कल्याण तथा लोककल्याण की भावना परिलक्षित होती है। इसके पीछे एक यह तर्क भी दिया जाता है कि प्राचीन काल की कथाओं में पौराणिक उदात्त चरित्रों का उल्लेख होने के कारण इनमें लोक के प्रति सद्भाव एवं मंगल कामना का वैशिष्ट्य पाया जाता है। मौखिक परंपरा से विकसित तथा लोकरजंकता का गुण विद्यमान है। क्योंकि साहित्य का उद्देश्य केवल थोथा या सुख मनोरंजन ही नहीं है, बल्कि इस विशेषता को दर्शाते हुए जनकल्याण की भावना भी लोकसाहित्य में होनी चाहिए।

3- लोक जीवन की झाँकी - कुमाऊँ क्षेत्र को रंगीला कहा जाता है, तो गढ़वाल को छबीला। यहाँ की खूबसूरत वादियाँ सहृदय को बरबस अपनी ओर आकर्षित करती हैं। कुमाऊँ के सीमान्त जनपदों की आदिवासी जनजातियों की अपनी अलग पहचान है। इनके रीति रिवाज तथा प्रथाएँ सभ्य समाज से हटकर हैं। आप समझ पायेंगे कि लोकजीवन की मौखिक परंपरा में इन आदिमजातीय परिवारों की संस्कृति का बहुत बड़ा योगदान रहा है। कुमाउनी लोकगाथाओं में यहाँ की भिटौली, घुघुतिया घी त्यार, फूलदेई, बिरूड़िया आदि लोक परंपराओं का समावेश हुआ है। नातेदारी, रक्त संबंध तथा अन्य सामाजिक संस्थागत आदर्श भी लोककथाओं के विषय बने हैं। यहाँ के लोगों का रहन-सहन तथा ससुराल मायके जाने वाली प्रवृत्तियों का उल्लेख भी लोककथाओं में स्पष्ट झलकता है।

(4) लोक सत्यानुभूति का समावेश- कुमाउनी लोककथाएं आख्यान मूलक होने के साथ-साथ लोक सत्य उद्घाटन में भी अग्रणी हैं। लोकमानस की पवित्र मेधा से उद्भूत इन कथाओं का उत्कर्ष सत्य पर आधारित होता है। काफल पाको मैंनिचाखो (काफल पके किन्तु मैंने नहीं चखे) चल तुमड़ी बाटो बाट मैं के जाण बुड़ियकि बात (तुमड़ी तुम अपने रास्ते चलो मैं बुढ़िया के बारे में कुछ नहीं जानती) जैसी लोककथाएं लोक चातुर्य तथा लोक सत्य का उद्घाटन करती हैं।

यहाँ हम समझ सकते हैं कि व्यक्ति की सोच एक कल्याणकारी जगत का निर्माण करने पर आमादा है। यहाँ की कथाएं व्यष्टि से समष्टि तक का सत्यापन करने में सक्षम हैं।

(5) पशु पक्षियों तथा प्राकृति उपादानों की अवस्थिति:- कुमाऊँ की लोककथाओं में यहाँ की प्रकृति तथा पशु पक्षियों को एक ऐसे आलम्बन के रूप में ग्रहण किया गया है, जिससे लगता है कि ये प्राकृतिक उपादान तथा पशु पक्षी मानव जगत से सीधा संवाद करते हैं। कुमाऊँ के

स्थानीय पक्षी न्यौली, घुघुत, का उल्लेख कई कथाओं में हुआ है। इसी प्रकार यहां की वनस्पति, फल फूल, सिसौण (बिच्छू घास) काफल (एक रसीला फल) तुमड़ा (गोल लौकी) भी कई कथाओं में वर्णित है। यहां की स्थानीय नदियों काली, गोरी, सरयू, रामगंगा सहित छोटे-छोटे गधेरों पठारों तथा जंगलों का वर्णन भी अनेक कथाओं में मिलता है। लोकसाहित्य के मूर्धन्य विद्वान प्रोफेसर देव सिंह पोखरिया के शब्दों में - 'कुमाउनी लोककथाओं में पुर पुतई पुरै, पुर, तीन, वाट कि फिफिरी, अधिलै लाकड़ि जलि पछिलै ऊँ छि, धोति निचोड़ि मोत्युं मिलि, सुनुकि बतख, भूतक नाश, दिन दिदी जाग जाग, घुघुति, एक राजाक द्वि सींग आदि कथाएं बहुचर्चित तथा लोकप्रिय लोककथाएं हैं।'

(6) उत्सुकता तथा जिज्ञासा का भाव:- कुमाउनी लोककथाओं में अधिसंख्य कथाएं एक छि राज (एक राजा था) एक छि बुड़ी (एक बुढ़िया थी) से प्रारंभ होती है जैसे ही एक राजा था' कहा जाता है कि सुनने वाले की एकाग्रता तथा औत्सुक्य वहीं से शुरू हो जाता है। ये कथाएं दादी नानी के मुख से अपने छोटे-छोटे पोते-नातियों को अक्सर सुनाई जाती हैं। इन कथाओं का कथानक संक्षिप्त एवं सारगर्भित होता है। वर्ण्य विषय में अन्ततः चारमोत्कर्ष पर कथा का भाव लक्षित होता है। शुरू से लेकर अंत तक कथा कहने वाले की अपेक्षा सुनने वाले की तत्परता देखने लायक होती है। श्रोता के भीतर एक जिज्ञासा का भाव कथा क्रम के अनुसार बढ़ता जाता है। जब तक कथा का समाहार नहीं हो जाता, उत्सुकता बनी रहती है।

अतः हम कह सकते हैं कि कुमाउनी लोककथाएं अपने अस्तित्व में पूर्ण हैं। इनमें सुनने वाले की तत्परता इस बात का प्रमाण है कि कहीं न कहीं कथाभाव में मूल्यों की स्थापना तथा रोमांचित करने वाली विशेषता विद्यमान है। मौखिक और लिखित दोनों रूपों में प्राप्त इन कथाओं के आधार माननीय संवेदनाएं हैं। मानव द्वारा लोकरंजकता तथा स्वयं के बुद्धि चातुर्य को स्थापित करने में भी लोककथाओं का अवदान प्रशंसनीय एवं संग्रहणीय हैं। इन कथाओं में वैश्विक कल्याण तथा प्रेम का संदेश देने वाली प्रवृत्तियों का कुशल अनुशीलन हुआ है।

कुमाउनी लोक कथाओं का महत्व:- आपने साहित्य को समाज का दर्पण के रूप में सदा ही स्वीकार किया है। किसी भी साहित्य की प्रवृत्ति समाजशील होती है, इन लोककथाओं का सबसे बड़ा महत्त्व मानवता की स्थापना विश्व एवं राष्ट्र प्रेम है। इन लोककथाओं को कुमाउनी लिखित साहित्य की परंपरा में मील का पत्थर माना जाता है। इनका समाज के जनमानस के साथ सीधा संपर्क होता है। जिससे लोकानुभूति लोकाभिव्यक्ति में स्वतः परिणत हो जाती हैं। इन लोककथाओं में निहित कुमाउनी संस्कृति के तत्वों द्वारा आम लोगों को यहां की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक चेतना के बारे में पता चल जाता है। मानवीय संवेदना को आदिकालीन परंपरा ने किस प्रकार ग्राह्य बनाया। इसे भी एक बड़े महत्त्व के रूप में देखा जाता है। समाज में साहित्य के अध्येताओं के लिए एक आंचलिक विधा के रूप में कथाओं का परिचय आसानी से प्राप्त कर

लिया जाता है। कुमाउनी संस्कृति के अलावा रचयिता के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को स्मारक बनाने में लोककथाओं के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।

कुमाउनी लोककथाओं में यहां के ग्रामीण जीवन की सुन्दर झांकी स्पष्ट दिखाई देती है। इन कथाओं में सद्भाव तथा मूल्यों की स्थापना करने की क्षमता है। कई लोककथाएं भावात्मक होने के कारण यहां की बहू बेटियों के मर्मस्पर्शी एवं भावुक स्वभाव का परिचय देती हैं। इनमें वैचारिक प्रखरता होती है तथा किसी सामाजिक सांस्कृतिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ये लोककथाएं बहुत महत्वपूर्ण समझी जाती हैं। लोकमंगल की कामना से लेकर विश्व कल्याण की अवधारणा इन कथाओं के मूल में निहित होता है। यहां पर हम समझ सकते हैं कि लोककथाएं समाज के मनोरंजन में साहित्यिक अवदान के लिए हर युग में सर्वग्राह्य सर्व स्वीकार्य होती हैं।

बोध प्रश्न

इकाई 7.3 के प्रश्न

क- उचित विकल्प चुनिए-

- I. 'चल तुमड़ी बांटों बाट, मैं के जाणू बुड़ियकि बात' है-लोककथा
- II. लोकगीत
- III. लोकगाथा

2- लोककथा की मूल परंपरा क्या है?

- I. शाब्दिक
- II. लिखित
- III. वाचिक
- IV. आर्थिक

3- लोककथा का कथानक होता है-

- I. संक्षिप्त एवं सुगठित
- II. विस्तीर्ण
- III. हास्यास्पद
- IV. सूक्तिपरक

ख- निम्नलिखित लघुउत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए-

- 1- लोककथा की परिभाषा दीजिए।
- 2- लोककथा की पांच मुख्य विशेषताएं बताइए।

- 3- कुमाउनी लोककथाओं के संक्षिप्त इतिहास पर प्रकाश डालिए।
- 4- कुमाउनी लोककथाएं यहां के समाज के लिए किस प्रकार उपयोगी हैं?

7.4 कुमाउनी लोककथाओं का परिचय

कुमाऊँ में अनेक लोककथाएं प्रचलित हैं। कुछ कुमाउनी कहावतों के रूप में प्रचलित लोककथाएं भी कथा आख्यान से परिपूर्ण हैं। कुमाऊँ क्षेत्र में ही इन कथाओं का जन्म हुआ था। ये इतिहास के सतत प्रवाह से समाज में संचरित होती आई हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण लोककथाओं का परिचय हिन्दी में यहां प्रस्तुत किया जाता है-

(1) पिनगटियक मरण (पिनगट का मरण)

किसी गांव में पिनगट नाम का एक व्यक्ति रहता था। उसके परिवार में दो ही सदस्य थे पिनगट और उसकी पत्नी। एक दिन जब उसकी पत्नी रोटी पका रही थी तब वह बाहर से कान लगाकर सुनने लगा। बाद में अंदर आकर उसने कहा कि आठ बार पट-पट हुई सोलह बार तवे में छप की आवाज हुई, कुल आठ रोटियां होनी चाहिए। चार यहां पर हैं चार कहां गए। उसकी पत्नी ने चार रोटियां छिपाई थी, वह तुरन्त बोली- 'स्वामी! आप तो अन्तरयामी हैं सब जानते हैं।' ऐसा कहते हुए उसकी पत्नी ने चार छिपाई रोटियां सामने रख दी। दूसरे दिन उसकी पत्नी ने सारे गांव में खबर फैला दी कि उसके पति पुछ्यार (पूछ करने वाले) हैं। फिर क्या था। किसी स्त्री का मंगलसूत्र खो गया था। वह पिनगट के पास आई। पिनगट तो कुछ नहीं जानता था, फिर उसने गांव की एक सभा की। सभा में सभी गांववासी आए। एक अन्य ग्रामवासी का नाम भी पिनगट था। पिनगट ने सभा में सबकी तरफ देखा फिर असहाय होकर उसने कहा- 'आ गया रे अब पिनगटिया का मरण' दूसरा पिनगट जिसने मंगलसूत्र चुराया था। सामने आकर हाथ जोड़कर कहने लगा। ये लो मंगलसूत्र पर मेरी जान बचा लो। ऐसा कहते ही पिनगटिए की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उसने मन ही मन भगवान को धन्यवाद दिया। इस तरह पिनगट की यश कीर्ति चारों ओर फैल गई।

(2) के करूं पुतु पुरे पुरे (क्या करूं पुत्र काफल पूरे के पूरे थे)

यह लोककथा कुमाऊँ में सर्वत्र प्रचलित है। कहा जाता है कि प्राचीन समय में एक फाख्ते (घुघुत) ने जमीन के गना काफल सुखाने धूप में डाल। उसने अपने पुत्र को इसकी रक्षा करने को कहा। घुघुत कहीं दूर चला गया। शाम को जब घुघुत वापस लौटा तो उसने देखा कि काफल बहुत कम है। उसका दिमाग ठनका। उसने मन ही मन सोचा जरूर मेरे बेटे ने धूप में सुखाने डाले

काफल खा लिए हैं। उसे क्रोध आया और उसने इस गलती के लिए अपने बेटे को मार डाला। घुघुत रो रहा था। पास से गुजरते एक अन्य घुघुत को उसने बात बताई उसने कहा कि तुम मूर्ख हो। काफल धूप में सूखने के बाद कम हो गए होंगे तुमने अनर्थ किया जो अपने बेटे को मार डाला। ऐसा सुनकर घुघुत सदमें से बेहोश हो गया और पुत्र वियोग में छटपटाते हुए उसने अपने प्राण त्याग। कहा जाता है कि आज भी वह घुघुत के करू पुतू पुरे पुरे कहकर अपना पश्चाताप प्रकट करता है।

(मौखिक परंपरा के अनुसार संकलित)

(3) रीश रव्वै आपण घर बुद्धि ख्वै पराय घर

(क्रोध अपना घर नष्ट करता है बुद्धि पराए घर को नष्ट करती है)

मनुष्य की बौद्धिकता को प्रदर्शित करने वाली इस कथा में कौवे नामक पक्षी को आधार बनाया गया है। इस कथा के अनुसार- एक कौवे के दो विवाह हुए। वह एक पत्नी को बहुत प्यार करता था तथा दूसरे से नफरत करता था। एक समय कौवा सात समुन्द्र पार गया तथा दोनों पत्नियों को अपने साथ ले गया। उड़ते समय उसने अपनी लाइली पत्नी को मुंह में पकड़ लिया। दूसरी को उसने अपनी पीठ पर बैठा लिया। सौतियां डाह से जली भुनी पीठ पर बैठी कुलाइली पत्नी ने गुस्से से कहा- एक राजा की दो शादियां, एक राजा की दो शादियां' कौवे को सहन नहीं हुआ वह 'रॉड का क्या तू रॉड का क्या?' ऐसा कहते कहते बोलने से उसका मुंह खुला तथा लाइली औरत समुद्र में जा गिरी। तब कहा जाता है कि क्रोध अपने घर को नष्ट करता है, जबकि बुद्धि पराए घर को तबाह कर देती है।

(संकलन डॉ. देव सिंह पोखरिया)

(4) भगवान कि माय (ईश्वर की माया)

एक बार एक राजा अपनी पत्नी तथा दो बच्चों सहित देश निकाला होने के बाद देश छोड़कर जाने लगा। रास्ते में नदी पार करते समय राजा ने अपनी पत्नी तथा एक लड़के को नदी तट पर छोड़ दिया। एक लड़के को कंधे पर बैठाकर राजा नदी पार कर रहा था। किनारे वाले बेटे पर एक बाघ झपटा तो राजा ने अचानक पीछे देखा। हड़बड़ी में कंधे वाला बालक नदी में गिर गया और बह गया। राजा बहुत घबराया था। उसने नदी के किनारे पर आकर देखा। उसकी पत्नी बच्चा गायब थे। राजा ने सोचा कि बदकिस्मती आदमी का साथ कभी नहीं छोड़ती। ऐसा सोचते हुए वह नदी तट पर सो गया। बह गए पुत्र को एक मछुवारे ने बचा लिया। बाघ का आक्रमण हुए बच्चे को एक शिकारी ने बचा लिया तथा शिकारी ने उसकी पत्नी तथा बच्चे को पाल लिया। सोए हुए राजा को दूसरे देश वालों ने राजगद्दी पर बैठा दिया क्योंकि उसका माथा चमकदार था। राजा को तो उसका सम्मान मिल गया किन्तु वह अपनी पत्नी तथा बच्चों के बिछुड़ने के कारण परेशान था। संयोग की बात देखिए, जो बालक बहा था, उसे किसी मछुवारे ने पाल पोसकर बड़ा किया तथा वह राजा के महल में नौकरी पर लग गया। दूसरा लड़का जिसे बाघ उठाकर ले

गया था एक शिकारी द्वारा बचा लिया गया था। उसे भी राजा के महल में गार्ड की नौकरी मिल गई। राजा की पत्नी भी भटकते भटकते राजमहल में नौकरानी के रूप में कार्य करने लगी। एक दिन राजा ने सारे राजमहल के कर्मचारियों के सामने अपने विगत अतीत की कथा सुनाई। तो राजा की पत्नी जो नौकरानी का कार्य करती थी, तुरन्त सब कुछ भांप गई, फिर उसने अपने पुत्रों तथा राजा को सारी कथा सुनाई। सब अवाक थे। ईश्वर के विधान को वरदान समझकर राजा का परिवार राजमहल में आराम से रहने लगा।
(साभार श्रीमती सरस्वती दुबे)

इसके अतिरिक्त भी कई प्रकार की लोककथाएँ कुमाऊँ में प्रचलित हैं। कुछ कहावतों के रूप में कथा के भाव को ग्रहण किए हैं। एक राजाक द्वि सींग (एक राजा के दो सींग) धोति निचोड़ि मोत्यूँ मिल (धोति निचोड़ी तो मोती मिल गए) इनरू मुया काथ (इनरवे मुया की कथा) राज के धन मि धन (राज के पास धन कहाँ मेरे पास धन है) एक कावक नौ काव (एक कौवे के नौ कौवे) काफल पाको मैं नि चाखो (काफल पके पर मैंने नहीं चखे) तथा जुँ हो जुँ हो (मैं जाऊँ, मैं जाऊँ) कुमाऊँ में प्रचलित प्रमुख लोककथाएँ हैं। इन लोककथाओं में व्यक्ति के निजी जीवन की व्यथा तथा सामाजिक सद्भाव बराबर रूप से विद्यमान है। आप देख सकते हैं कि लोक की भावुकतामयी परिणति ही यहाँ की लोककथाओं में स्पष्ट रूप से विद्यमान है।

बोध प्रश्न

7. 4 के प्रश्न

क - सही उत्तर को चुनकर लिखिए

1- कुमाउनी में रीश का हिन्दी अर्थ क्या है ?

- I. प्रसन्नता
- II. क्रोध
- III. दुख
- IV. वेदना

2 - ' के करूँ पुतु पुरे पुरे ' में पुतु का अर्थ है -

- I. भानजा
- II. पुत्री
- III. बुआ
- IV. पुत्र

3 - ' पिनगटिया का मरण ' नामक लोककथा का भाव है-

- I. बुद्धि चातुर्य एवं व्यंग्यपरक

- II. दहेज प्रथा का विरोध
- III. परमात्मा से मिलन
- IV. नदी पठारों के रूप

ख - निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दीजिए

- 1- लोककथाओं में पशु पक्षियों का वर्णन किस प्रकार हुआ है ?
- 2 - भगवान की माया नामक लोककथा का सारांश लिखिए ।
- 3 - लोककथाओं में वर्णित स्थानीय तत्व को समझाइए ।

7. 5 कुमाऊनी लोककथाओं का वर्गीकरण

कुमाऊँ में प्रचलित लोककथाओं के आधारभूत तत्व यहाँ के समाज संस्कृति तथा प्राकृतिक संसाधनों द्वारा निर्मित हैं। आप समझ सकते हैं कि इन प्राकृतिक तथा अधिप्राकृतिक क्रिया व्यापारों द्वारा ही यहाँ के जनमानस ने लोककथाओं को अपने अपने ढंग से गढ़ा है। कतिपय विद्वानों ने लोककथाओं के वर्गीकरण का आधार विषयगत भाव को माना है। क्योंकि यहाँ प्रचलित लोककथाएँ अलग अलग विषयों से संबंधित होते हुए समाज के जन का मानसंरजन करने में सक्षम हैं। कुमाऊँ की लोककथाओं को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है-

- 1- पशुपक्षी, कीड़े मकोड़े तथा अन्य जीवों पर आधारित कथाएँ ।
- 2 - अलौकिक ईश्वरीय सत्ता से संबंधी कथाएँ।
- 3- धर्म अनुष्ठान एवं उपवास विषयक कथाएँ।
- 4- दैत्य, राक्षस, प्रेत, भूत आदि संबंधी कथाएँ।
- 5- राष्ट्रीय चेतना तथा बौद्धिक चेतनामूलक कथाएँ।
- 6 - नीति परक एवं उपदेशपूर्ण कथाएँ ।
- 7 - मनोरंजन एवं व्यंग्यपरक कथाएँ ।
- 8 - प्राकृतिक जीवन एवं व्यंग्यपरक कथाएँ।
- 9- बाल जगत की कथाएँ।

बोध प्रश्न

7.5 के बोध प्रश्न

क - निम्नलिखित में असत्य कथन छाँटिए-

- 1- लोककथाओं में प्रकृति के तत्वों का अभाव है।
- 2 - लोककथा परंपरा द्वारा विकसित हैं।
- 3 - उपदेशात्मकता लोककथा की विशेषता नहीं है।
- 4 - लोककथा में बाल कथा समाविष्ट है।
- 5- न्योली एक लोककथा है।

ख- लघु उत्तरीय प्रश्न

- 1 - लोककथा का संक्षिप्त वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।
- 2-- कुमाउनी लोककथाओं में वर्ण्य विषय की विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

7.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

कुमाउनी लोककथा के इतिहास एवं स्वरूप को समझ चुके होंगे।

कुमाउनी लोककथाओं की विशेषताएँ एवं महत्त्व को उनके विषयगत आधार पर जान गए होंगे।

इतिहास काल से परंपरित लोककथाओं का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे।

लोककथाओं को उनके वर्गीकरण के आधार पर समझ गए होंगे।

आप यह भी भलीभाँति समझ गए होंगे कि रचयिताओं के अज्ञात होने पर भी 'लोककथाएँ जन जन की वाचिक परंपरा में अद्यतम जीवन्त हैं।

7.7 पारिभाषिक शब्दावली

मनगढ़न्त - मन से स्वतंत्र रूप से निर्मित

गल्प	-	काल्पनिक कथा
दन्तकथाएँ	-	मौखिक रूप से प्रचलित कथाएँ
श्रुति परंपरा	-	सुनने सुनाने की परंपरा
लोकरंजन	-	लोक का मनोरंजन
उपादान	-	घटक या तत्व
अवदान	-	योगदान

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

इकाई 7.3 के उत्तर

- क - 1- लोककथा
- 2- वाचिक
- 3- संक्षिप्त एवं सुगठित

7.4 के उत्तर

- क - 1- क्रोध
- 2 - पुत्र,
- 3 - बुद्धि चातुर्य एवं व्यंग्यपरक

7.5 के उत्तर

- क - 1, 3, 5 असत्य कथन हैं।

7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- 1- पाण्डे डॉ. त्रिलोचन , कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य , पृ- 148 - 170
- 2- हिमालयन फोकलोर - भूमिका , पृ- 181
- 3- चातक , गोविन्द, भारतीय लोकसंस्कृति का संदर्भ मध्य हिमालय , पृ -340

-
- 4- पाण्डे त्रिलोचन , कुमाऊँ का लोकसाहित्य ,पृ -199
 - 5- जोशी, कृष्णानंद,कुमाऊँ का लोक साहित्य , पृ -35
 - 6- भट्ट, पुष्पलता, कुमाउनी लोककथाओं में जनजीवन ,पृ - 86
 - 7- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, भाग 16,पृ - 629
 - 8- पोखरिया ,देवसिंह एवं तिवारी डी0 डी0 , कुमाउनी लोकसाहित्य , पृ - 80
 - 9 - पूर्वोक्त, पृ -26 -27
 - 10- पोखरिया , डी0एस0 , लोकसंस्कृति के विविध आयाम: मध्य हिमालय के संदर्भ में,
पृ -69-71
 - 11- बटरोही, कुमाउनी संस्कृति ,पृ - 35-37
-

7.10 सहायक ग्रंथ सूची

- 1- धरती फूल बुरांश की, डॉ. नारायण दत्त पालीवाल
 - 2- कुमाऊँ का लोक साहित्य , डॉ. त्रिलोचन पाण्डे ।
 - 3- कुमाउनी भाषा का उद्भव एवं विकास,शेरसिंह बिष्ट , अंकित प्रकाशन हल्द्वानी
 - 4- कुमाउनी लोकसाहित्य, डॉ.देवसिंह पोखरिया, डॉ.डी.डी.तिवारी,राजहंस प्रेस
-

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

- 1- कुमाउनी लोककथाओं के इतिहास एवं स्वरूप पर एक लेख लिखिए।
- 2- कुमाउनी लोककथाओं का परिचय देते हुए विषयगत आधार पर उनका वर्गीकरण कीजिए।

इकाई 8 कुमाउनी लोकसाहित्य: अन्य प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 कुमाउनी लोकसाहित्य की अन्य प्रवृत्तियाँ

8.3.1 कुमाउनी मुहावरे एवं कहावतें

8.3.2 कुमाउनी पहेलियाँ

8.3.3 अन्य रचनाएँ

8.4 कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताएँ तथा महत्त्व

8.5 सारांश

8.6 पारिभाषिक शब्दावली

8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.9 सहायक ग्रंथ सूची

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

पुराकाल से मानवीय अभिव्यक्ति के दो रूप हमें प्राप्त होते रहे हैं। एक वाचिक या मौखिक परंपरा के रूप में प्रचलित है तथा दूसरी विधा लिखित अथवा परिनिष्ठित साहित्य के रूप में जानी जाती है। हमने पूर्ववर्ती इकाइयों में इन दोनों रूपों का अध्ययन किया है। कुमाउनी लोकसाहित्य की प्रकीर्ण विधाओं का अध्ययन इस इकाई के अंतर्गत किया जाएगा। कुमाऊँ के समाज में मुहावरे, कहावते तथा पहेलियाँ आदि काल से मौखिक रूप में प्रचलित रही हैं। इनके निर्माताओं के बारे में अद्यतम कुछ नहीं कहा जा सकता। युगों से संचित ज्ञानराशि के रूप में ये प्रकीर्ण कुमाउनी विधाएँ लोकजीवन की रोचक धरोहर के रूप में विख्यात हैं।

प्रस्तुत इकाई के प्रारंभ में कुमाउनी लोकसाहित्य की अन्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए उनके स्वरूप को अभिव्यक्त किया गया है। कुमाऊँ में प्रचलित लोक कहावतों, मुहावरों, पहेलियों आदि को पारिभाषित करते हुए उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। इकाई के उत्तरार्ध में कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताओं तथा महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। कुल मिलाकर प्रस्तुत इकाई लोकसाहित्य की विविध विधाओं का समाहार करती हुई अपने सामाजिक महत्त्व को प्रदर्शित करती है।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

कुमाउनी मुहावरों तथा कहावतों के आशय को स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे

कुमाउनी कहावतों एवं मुहावरों में निहित लोक जीवन दर्शन का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे

कुमाउनी पहेलियों तथा यहाँ के लोगों की बुद्धि चातुर्य पर प्रकाश डाल सकेंगे

प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताओं तथा महत्त्व को समझ सकेंगे।

8.3 कुमाउनी लोकसाहित्य की अन्य प्रवृत्तियाँ

कुमाऊँ में लोकगीत, लोककथा तथा लोकगाथा के अतिरिक्त अन्य लोक विधाएँ भी प्रचलित हैं। इनमें मुहावरे, कहावतें तथा पहेलियाँ प्रमुख हैं। ये सभी विधाएँ इतिहास काल के दीर्घ प्रवाह में अपना स्थान निर्धारित करती आई हैं। मुहावरे तथा कहावतों एवं पहेलियों की रचना किस व्यक्ति द्वारा की गई? किन परिस्थितियों में की गई? इस सम्बन्ध में आज तक ठीक-ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य है कि ये विविध विधाएँ तत्कालीन परिस्थितियों से लेकर आज तक हमारे समाज में पूरी तरह से जीवन्त हैं। इन विधाओं को सूत्रकथन के रूप में जाना जाता है। लोकमानस की अभिव्यक्ति प्रायः मौखिक परंपरा द्वारा संचालित रही है। लोकजीवन से सम्बद्ध कई घटनाएँ तथा विचार प्रायः मौखिक रूप में ही अभिव्यक्त होते हैं। कुमाउनी मुहावरों तथा कहावतों को सूत्रकथन के रूप में समाज में बहुत प्रसिद्धि मिली है। मानव की सभ्यता व संस्कृति के अनेक तत्वों पर आधारित इन प्रकीर्ण विधाओं में संक्षिप्तता सारगर्भितता तथा चुटीलापन है। इनकी मूल विशेषता इनकी लोकप्रियता है। इसी कारण ये कहावतें मुहावरें आदि जनमानस की जिह्वा पर जीवित रहते हैं। कहावतों को विश्व नीति साहित्य का एक प्रमुख अंग माना जाता है। संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों में कहावतों तथा मुहावरों के व्यापक प्रयोग हुए हैं।

भारतवर्ष ही नहीं, अपितु संसार के कई अन्य देशों में भी इन प्रकीर्ण विधाओं का प्रचलन अपनी अपनी भाषाओं में है। हमारे देश में मुहावरे तथा कहावतों की परंपरा वैदिक काल से चली आ रही है। कुमाउनी लोकसाहित्य के अन्तर्गत आने वाली लोक कथाएँ तथा लोकगाथाएँ इन कहावतों तथा पहेलियों से गूढ़ संबंध रखती हैं। इन सूत्रात्मक व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराने वाली विधाओं द्वारा लोकानुभूति की अभिव्यक्ति सहज रूप में जाया करती है। कुमाऊँ में इन कहावतों का प्रयोग लाक्षणिक अर्थ के प्रकटीकरण के लिए किया जाता है। पहेलियाँ भी कुमाउनी जनमानस की लोकरंजक मनोविज्ञान से संबंधित हैं। इनमें बुद्धितत्व को मापने की अब्दुत कला है। लोकमानस की तमाम जिज्ञासाओं में निहित वातावरण तथा मनोविज्ञान का पुट इन पहेलियों

का निधार है। मनुष्य की लाक्षणिक त्वरित बुद्धि के आदान प्रदान तथा जिज्ञासा के समाधान हेतु ये विधा लम्बे समय से प्रचलित रही हैं।

कहा जा सकता है कि जीवन मूल्यों के धरातल पर बुद्धि की परख करने में तमाम प्रकीर्ण विधाएं यहां के लोकसाहित्य को समृद्ध किए हुए हैं। इनके समाज में निरंतर प्रचलित रहने से लोकसाहित्य की परंपरा अक्षुण्ण रही है।

8.3.1 कुमाउनी मुहावरे एवं कहावतें

कुमाउनी समाज में आरंभिक काल से मुहावरों तथा लोकोक्तियों की अनूठी परंपरा रही है। वाचिक (मौखिक) परंपरा के रूप में मुहावरे तथा कहावतें अपने लाक्षणिक अर्थ तथा व्यंग्यार्थ की अनुभूति के लिए प्रसिद्ध हैं। यदि लोकसाहित्य के विवेचन को ध्यान से देखा जाए तो मुहावरे तथा कहावतें किसी भी लोक समाज दर्शन से जुड़ी होती हैं। इनमें संक्षिप्त रूप से गहन भावार्थ छिपा रहता है। व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराने वाली इन विधाओं के निर्माताओं के विषय में सटीक तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता है। इतना अवश्य है कि ये लोक के गूढ़ आख्यान तथा उक्ति चातुर्य के प्रदर्शन में सिद्धहस्त हैं। यहां हम कुमाउनी मुहावरे तथा कहावतों के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कुछ व्यावहारिक मुहावरें तथा कहावतों का अर्थ स्पष्ट करेंगे।

कुमाउनी मुहावरे:- मुहावरा शब्द की व्युत्पत्ति अरबी भाषा से मानी जाती है। अरबी भाषा में मुहावरे का अर्थ आपसी बातचीत, वार्ता या अभ्यास होता है। अंग्रेजी में मुहावरे को ईडियम कहा जाता है। देव सिंह पोखरिया के शब्दों में- इस दृष्टि से किसी भाषा के लिखित या मौखिक रूप में प्रचलित वे सभी वाक्यांश मुहावरों के अन्तर्गत आते हैं। जिनके द्वारा किसी साधारण अर्थ का बोध विलक्षण और प्रभावशाली ढंग से लक्षणा और व्यंजना के द्वारा प्रकट होता है।

मुहावरों का प्रयोग दीर्घकाल से समाज में होता रहा है। यह केवल हिन्दी या कुमाउनी या हिन्दी में ही नहीं, अपितु विश्व के सभी साहित्यों में अपने ढंग से व्यवहृत है। मुहावरा एक छोटा वाक्यांश होता है। मुहावरे तथा कहावत में मूल अंतर यह है कि कहावत एक पूर्ण कथन या वाक्य होता है। तथा मुहावरा वाक्यांश। कहावत में कथात्मकता होती है। आप जान गए होंगे कि कथा के भाव को आत्मसात करने वाली विधा लोककथा कही जाती है। कहावत कथा के आख्यान को समेटे रखता है, जबकि मुहावरा लाक्षणिक अर्थ का बोध कराकर समाज में अर्थ प्रतीति को बढ़ाता है।

कुमाऊँ क्षेत्र में प्रचलित मुहावरों की संख्या लगभग चार हजार से अधिक होगी। ये संख्या यहां के ग्रामीणों की बोलचाल की भाषा में अधिक प्रभावी है। आपसी वार्तालाप के लिए कुमाउनी में विशिष्ट मुहावरे का प्रचलन है। जैसे- 'क्वीड़ करण' का अर्थ होता है महिलाओं की गपशप, किन्तु सामान्य गपशप के लिए 'फसक मारण' मुहावरा प्रचलन में है।

कुमाउनी मुहावरे विविध विषयों पर आधारित हैं। संक्षेप में मुहावरों का वर्गीकरण यहां प्रस्तुत किया जाता है-

- (1) सामाजिक जीवन पर आधारित मुहावरे
- (2) व्यक्तिगत शैली पर आधारित मुहावरे
- (3) व्यवसाय संबंधी मुहावरे
- (4) जाति विषयक मुहावरे
- (5) प्राकृतिक उपादानों पर आधारित मुहावरे
- (6) भाग्य तथा जीवनदर्शन संबंधी मुहावरे
- (7) तंत्र-मंत्र तथा लोक विश्वास संबंधी मुहावरे

उपर्युक्त के आधार पर हम देखते हैं कि मनुष्य के शरीर के अंगों पर भी अधिकांश मुहावरों का प्रचलन समाज में होता आया है।

कुछ कुमाउनी मुहावरों को उनके हिन्दी अर्थ के साथ यहां प्रस्तुत किया जाता है-

- (1) ख्वर कन्यून- सिर खुजलाना
- (2) बाग मारि बगम्बर में भैटण- बाघ मारकर बाघ की खाल पर बैठना।
- (3) कन्यै कन्यै कोढ़ करण- खुजला खुजला कर कोढ़ करना
- (4) स्यैणि मेंसोंक दिशाण अलग करण- पति पत्नी का बिस्तर अलग करना।
- (5) आंख मारण- आंख मारना (इशारा करना)
- (6) लकीरक फकीर हुण- लकीर का फकीर होना।
- (7) गाड़ बगूण -नदी में बहा देना।
- (8) घुन टुटण- घुटने टूटना
- (9) घुन च्युनि एक लगूण- घुटना तथा मुंह साथ चिपकाना
- (10) गल्दारी करण- बिचौलिया पन करना
- (8) गोरख्योल हुण- गोरखों की भांति होना

- (12) बिख झाणण- विष झाड़ना
 (13) कांसक टुपर हुण- कांस की डलिया जैसा होना
 (14) पातल मुख पोछण- पत्ते से मुंह पोंछना।
 (15) जागर लगूण- जागर लगाना।

कुमाउनी कहावतें -

कहावत का अर्थ- कहावत शब्द की उत्पत्ति 'कह' धातु से हुई है। इसमें 'वत' प्रत्यय लगा है। अंग्रेजी में कहावत को चतवअमतइ (प्रो-वर्ब) कहा जाता है। संस्कृत साहित्य में कहावत के लिए 'आभाणक' शब्द का प्रयोग हुआ है। हिन्दी भाषा विज्ञान के ज्ञाता डॉ. के.डी.रूवाली के अनुसार 'कहावत का संबंध 'कहना' क्रिया से है। हर प्रकार का कथन कहावत की कोटि में नहीं आता। विशेष कथन को ही कहावत कहा जा सकता है। डॉ. सत्येन्द्र का अभिमत है कि कहावत लोकक्षेत्र की अपूर्व वस्तु है।

डॉ. त्रिलोचन पाण्डे ने कहावतों के संबंध में लिखा है, 'कहावतों ने इतिहास के दीर्घकालीन प्रवाह में भी अपना स्वभाव नहीं बदला है। कहावतों में राष्ट्रीय जाति धर्म आदि के समाजबद्ध तत्व पाए जाते हैं। सामाजिक जीवन की विशिष्ट परिस्थितियाँ ही कहावतों को जन्म देती हैं। जब व्यक्ति किसी परिस्थितियों या दृश्य को देखता है तो उसके मन में सहज ही कुछ विचार उत्पन्न होते हैं। ये विचार धीरे-धीरे स्थायी भाव के रूप में किसी सत्य की व्यंजना करने वाली उक्तियों के रूप में विकसित हो जाती हैं।' कहावतों के लिए लोकोक्ति शब्द भी प्रचलित है। उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र का अधिकांश भूभाग पर्वतीय है। यहां की भौगोलिक परिस्थितियाँ बड़ी विषम हैं। कुमाउनी समाज में कहावतों का प्रचलन आरंभिक काल से हो रहा है। इन कहावतों के रचयिता सर्वथा अज्ञात हैं फिर भी जनजन के मुख से इन कहावतों का प्रयोग होता रहा है। किस देश काल परिस्थिति में कौन सी कहावत प्रयुक्त होगी, यह स्वचालित रूप में जनमानस की बुद्धि के अनुरूप प्रवाहित होती रहती है। इन कहावतों में लोक विशेष की प्रक्रिया, इतिहास तथा स्थान विशेष की कथात्मकता निहित होती है।

कुमाउनी कहावतों में हिन्दी तथा अन्य हिन्दीतर भाषाओं की कहावतों के पर्याप्त लक्षण पाए जाते हैं। कहावतों को विश्वनीति साहित्य का अभिन्न अंग माना जाता है। क्योंकि वैश्विक स्तर पर इनमें लोकसत्य के उद्घाटन की विशेष क्षमता होती है, कुमाउनी लोकजीवन के अनुरूप हम देखते हैं कि लोक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों एवं मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार ने कहावतों को जन्म दिया है। इन लोक कहावतों में आदिम जातीय परिवारों में बोली जाने वाली लोकोक्तियों का मिश्रण है। स्थानीयता तथा सूत्रबद्धता कुमाउनी कहावतों का मूल लक्षण है।

पं.गंगादत्त उप्रेती ने कुमाउनी कहावतों का अंग्रेजी तथा हिन्दी भाषा में अर्थ स्पष्ट किया है। विषय की दृष्टि से कुमाउनी कहावतों के वर्गीकरण को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है-

- (1) सामाजिक कहावतें
- (2) ऐतिहासिक कहावतें
- (3) धार्मिक कहावतें
- (4) नीति तथा उपदेशात्मक कहावतें
- (5) राजनीति संबंधी कहावतें
- (6) स्थान विशेष से संबंधित कहावतें
- (7) जाति विषयक कहावतें
- (8) हास्य व्यंग्यपूर्ण कहावतें
- (9) कृषि-वर्षा संबंधी कहावतें
- (10) प्रकीर्ण कहावतें

विविध विषयाधारित कहावतों में कुमाउनी समाज की संस्कृति तथा भाषा के मूल लक्षणों एवं विशेषताओं का पता आसानी से लगाया जा सकता है।

यहां आप कुछ कुमाउनी कहावतों तथा उनके हिन्दी अर्थ को समझ सकेंगे-

- (1) मुसकि ऐ रै गाउ गाउ बिराउक है री खेल- चूहे की मुसीबत आई है, बिल्ली के लिए खेल जैसा हो रहा है।
- (2) जो गों जाण नै, वीक बाट के पुछण- जिस गांव में जाना नहीं, उसका पता पूछने (रास्ता मालूम करने) से क्या लाभा।
- (3) भैंसक सींग भैंस कै भारि नि हुन- भैंस का सींग भैंस को भारी नहीं लगता अर्थात् अपनी संतान को कोई भी व्यक्ति बोझ नहीं समझता।
- (4) आपण सुन ख्वट परखणि कै दोष दी- अपना सोना खोटा परखने वाले को दोष।
- (5) लुवक उजणण आय फाव बड़ाय, मैसक उजड़ण आय ग्वाव बड़ाय- लोहे का उजड़ना आया तो फाल बनाया आदमी का उजड़ना आया तो उसे ग्वाला बनाया।

- (6) दुसरक ख्वर पै ख्वर घोसणल आपण ख्वर चुपड़ नि हुन - दूसरे के सिर पर अपना सिर घिसने से सिर चुपड़ा नहीं हो जाता।
- (7) ढको द्वार, हिटो हरिद्वार- द्वार ढको ,चलो हरिद्वार
- (8) घास देखण जागस्यर म्यल देखण बागस्यर-देवता देखने हो तो जागेश्वर जाइए, मेला देखना हो तो बागेश्वर जाइए।
- (9) जैक नौव नै वीक फौव- जिसकी नली (कली) नहीं उसका फल
- (10) मन करूं गाणी माणी करम करूं निखाणी- मन तो कितने ही सपने बुनता है ,पर कर्म उसे बिगाड़ देता है।
- (11) जॉ कुकड़ नि हुन वॉ के रात नि ब्यानी- जहां मुर्गा नहीं बोलता हो, क्या वहां रात्रि व्यतीत नहीं होती।
- (12) बागक अनारि बिराउ- बाघ के रूप में बिल्ली
- (13) नानतिनाक जाड़ दुग. में- बच्चों का जाड़ा पत्थर में
- (14) कॉ राजैकि राणि कॉ भगोतियकि काणि- कहां राजा की रानी कहां भगौतिए की कानी स्त्री।
- (15) पूरबिक बादोवक न द्यो न पाणि- पूरब के बादल से न वर्षा न पानी।

8.3.2 कुमाउनी पहेलियाँ

प्रकीर्ण विधाओं के अन्तर्गत कुमाउनी पहेलिया ने भी लोकसाहित्य में अपना एक अलग स्थान बनाया है। कुमाउनी में मुहावरे तथा कहावतों की भांति पहेलियों का प्रचलन भी काफी लम्बे समय से होता रहा है। अधिकांश पहेलियां घरेलू कामकाज की वस्तुओं तथा भोजन में काम आने वाली पदार्थों पर आधारित हैं। मानव तथा नियति सम्मत तत्वों पर भी अनेक पहेलियों का निर्माण हुआ है। कुछ कुमाउनी पहेलियां (कुमाऊँ में जिन्हें आण कहते हैं) यहां प्रस्तुत हैं-

- (1) थाई में डबल गिण नि सक चपकन सिकड़ टोड नि सक -थाली में पैसैं गिन न सके मुलायम छड़ तोड़ न सके ।

उत्तर- आकाश के तारे व सांप

- (2) सफेद घ्वड़ पाणि पिहूँ जाणौ लाल घ्वड़ पाणि पि बेर ऊणौ- सफेद घोड़ा पानी पीने जा रहा है लाल घोड़ा पानी पीकर आ रहा है- उत्तर - पूड़ी तलने से पूर्व तथा पश्चात
- (3) ठेकि मैं ठेकि बीचम भै गो पिरमू नेगि-बर्तन पर बर्तन बीच में बैठा पिरमू नेगी- उत्तर - गन्ना

(4) लाल लाल बटु भितर पितावक डबल- लाल लाल बुटआ भीतर पीतल के सिक्के उत्तर (लाल मिर्च)

(5) भल मैंसकि चेली छै कलेजा मजि बाव- अच्छे आदमी की लड़की बताते हहैं कलेजे में है बाल –उत्तर- आम

(6) काइ नथुली सुकीली बिन्दी -काली नथ सफेद बिन्दी - उत्तर- तवा और रोटी

(7) तु हिट मी ऊनूं - तू चल मैं आता हूँ

उत्तर सुई तागा

(9) मोटि मोटि कपड़ा हजार- मोटा मोटा कपड़े हजारउत्तर प्याज

8.3.3 अन्य रचनाएं

कुमाउनी लोकसाहित्य की प्रवृत्तियों में स्फुट रचनाओं का भी बड़ा महत्त्व है। लोकजीवन में वर्षों से चली आ रही मौखिक परंपरा में इन रचनाओं को जनमानस ने अपनी जिह्वा पर जीवंत किया है। इन रचनाओं में बालपन की हंसी ठिठोली, गीत तथा बालखेल गीत निहित हैं। बच्चों द्वारा झुंड बनाकर खेले जाने वाले खेलों में कुमाउनी गीतों को स्थान मिला है। ये गीत बच्चों द्वारा ही खेल में गाए जाते हैं तथा पीढ़ी दर पीढ़ी बच्चों को ये गीत हस्तांतरित होते रहते हैं।

कुमाऊँ में तंत्र-मंत्रका प्रचलन बहुत अधिक हैं। यहां निवास करने वाली आदिवासी जनजातियों में तंत्र-मंत्रका चलन बहुत पुराना है। सभ्य समाज के लोग भी झाड़ फूंक तथा तंत्र-मंत्रमें बहुत आस्था रखते हैं। मनुष्य तथा जानवरों को होने वाली व्याधियों के निवारण के लिए झाड़-फूंक तथा मंत्रों का सहारा लिया जाता है। पीलिया रोग होने पर उसे झाड़ने की परंपरा है। गाय भैंसों को घास से विष लगने पर उन्हें झाड़ फूंक कर इलाज करने की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। इसके अतिरिक्त हास परिहास के लिए या वातावरण को मनोरंजक बनाने के लिए तुकबन्दी करने की परंपरा स्पष्ट दिखाई देती है। ये तुकबन्दियां पारिवारिक सामाजिक नातेदारी की स्थिति का निरूपण बड़े ही हास्य व्यंग्यपूर्ण ढंग से करती हैं। लोकनाट्य के अन्तर्गत स्वांग करना, प्रहसन करना, रामलीला पांडवलीला, राजा हरिश्चन्द्र का नाटक, रामी बौराणी की कथा पर आधारित नाट्य आदि सम्मिलित हैं। यह लोकमानस की भावभूमि पर स्थानीय परंपरा का उल्लेख करती हैं।

बोध प्रश्न

8.3 क- सही विकल्प का चयन कीजिए

1- छाति खोलण (छाती खोलना) है-

- I. मुहावरा
- II. कहावत
- III. लोकनाट्य
- IV. तुकबन्दी

2- खसियकि रीश, भैंसकितीस (क्षत्रिय का क्रोध , भैंस की प्यास) क्या है-

- I. लोकगीत
- II. लोककथा
- III. कहावत
- IV. मुहावरा

3. पांडव लीला किस विधा के अन्तर्गत आती है?

- I. लोकनृत्य
- II. लोकनाट्य
- III. मुहावरा
- IV. कहावत

4. कुमाउनी लोकसाहित्य की कहावत विधा में पाया जाता है-

- I. गीतितत्व
- II. नाटक के तत्व
- III. कथा तत्व
- IV. मुहावरा

(ख) निम्नलिखित लघुउत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए-

(1) कहावत तथा मुहावरे में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

(2) कुमाउनी पहेलियों के चार उदाहरण देते हुए उनका हिन्दी अर्थ तथा उत्तर लिखिए।

8 . 4 कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताएँ तथा महत्त्व

कुमाउनी प्रकीर्ण विधाएँ लोकमानस के उर्वर भावभूमि के प्रदर्श हैं। आप समझ गए होंगे कि वाचिक परंपरा से ये विधाएँ विकसित होकर परिनिष्ठित साहित्य में भी धीरे-धीरे अवतरित होती रही हैं। इन स्फुट विधाओं में कुमाऊँ का लोक साहित्य एवं संस्कृति का निरूपण करने में भी अग्रणी रही हैं। इनकी विशेषताओं एवं महत्त्व को संक्षेप में यहां प्रस्तुत किया जाता है-

कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताएं

- (1) कुमाउनी मुहावरे तथा कहावतों में लाक्षणिक अर्थ की प्रधानता होती है। ये प्रकीर्ण विधाएं अपने साधारण अर्थ को छोड़कर किसी विशेष अर्थ की प्रतीति कराते हैं।
- (2) कुमाउनी प्रहेलिकाओं, तुकबंदी, मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ व्यंग्यार्थ का बोध कराती हैं। व्यंग्य के माध्यम से समाज की दशा व दिशा का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।
- (3) वाक् चातुर्य कहावतों तथा तुकबन्दी का प्रमुख लक्षण है। कथन की गंभीरता के लिए मुहावरे एवं कहावते युग युगों से प्रसिद्ध हैं।
- (4) कुमाउनी मुहावरे, कहावतों, प्रहेलियों तथा तुकबन्दी एवं बालगीतों में संक्षिप्तता पायी जाती है। साधापणतया कहावते एवं मुहावरों को सूक्ति या सूक्तिपरक संक्षिप्त कथन के रूप में देखा जाता है।
- (5) कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं में सजीवता पायी जाती है। लोकसत्यानुभूति इन प्रकीर्ण विधाओं की प्रमुख पहचान है।
- (6) कुमाउनी कहावतों सहित अन्य प्रकीर्ण स्फुट विधाओं के रचयिता सर्वथा अज्ञात हैं। ये स्फुट विधाएँ गद्य एवं पद्य साहित्य के रूप में संचरित रहे हैं।

महत्त्व - कुमाउनी साहित्य के विविध रूपों में परिनिष्ठित साहित्य द्वारा यहाँ के लोक सम्मत आख्यान तो समय समय पर प्रकट होते रहते हैं, किन्तु एक मौखिक परंपरा के रूप में वर्षों से चली आ रही कहावत, मुहावरा, प्रहेलियाँ लोकनाट्य आदि विधाओं का कुमाउनी लोकसाहित्य के क्षेत्र में अलग महत्त्व है। वर्तमान में कुमाऊँ क्षेत्र के बुजुर्ग स्त्री पुरुषों के मुख से इन प्रचीन कहावतों लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रचलन होता रहा है। इससे पता चलता है कि वर्तमान में भी साहित्य की मौलिक विधा तथा उसके यथार्थ को कुमाऊँ के जन बहुत महत्त्व प्रदान करते हैं। प्रतिवर्ष नवरात्र में आयोजित होने वाली रामलीलाओं में लोकनाट्य परंपरा का कुशल निर्वहन होता रहा है। इन लोकनाट्य में कृष्ण लीला, पांडव लीला, सत्य हरीशचन्द्र नाटक, रामी बौराणी सहित कई लोक सम्मत गाथाओं को मंचित कर प्राचीन गरिमामय चरित्रों का प्रस्तुतीकरण किया जाता है। जहाँ तक मुहावरे तथा कहावतों का प्रश्न है इनमें अपने लाक्षणिक अर्थ के साथ गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति मिलती है। साधारण शब्द देकर विषय गाम्भीर्य का परिचय हमें इनके द्वारा आसानी से प्राप्त होता है। व्यंग्यार्थ मूलक स्फुट विधाओं के द्वारा यहाँ की लोक मनोवैज्ञानिक शैली का पता लगाया जा सकता है। आदिम समाज शिक्षित नहीं होते हुए भी कितना विवकेशील था। उसने अपनी प्रतिभा की सहजात वृत्ति से कितनी ही लोक विधाओं को विकसित किया। इन सभी बातों पर सम्यक रूप से विचार करने के उपरांत कहा जा सकता है कि संसार की चाहे कोई भी विधा या संस्कृति क्यों न रही हो, उसका समाज के लिए मानस निर्माण का महत्त्व सदा

रहा है। ये स्फुट गद्य विधाएँ भी हमारे कुमाउनी समाज को नैतिकता, मानवता, तथा सद्भाव का पाठ पढ़ाने में समर्थ हैं। एक सामाजिक लोक दर्पण के रूप में इन रचनाओं का महत्त्व सदा बना रहेगा।

बोध प्रश्न

8.4 के बोध प्रश्न

लघुउत्तरीय प्रश्न

- (1) कुमाऊँ के प्रचलित किन्ही चार स्फुट विधाओं के नाम लिखिए।
- (2) कुमाउनी प्रकीर्ण (स्फुट) विधाओं की चार विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
- (3) कुमाउनी कहावतों एवं मुहावरों का सामाजिक महत्त्व समझाइए।

8.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप -

- (1) कुमाउनी लोकसाहित्य की अन्य प्रवृत्तियों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।
- (2) कुमाउनी मुहावरे तथा कहावतों के आशय को समझ चुके होंगे।
- (3) कुमाऊँ में प्रचलित पहेलियाँ तथा उनके उत्तरों को जान गए होंगे।
- (4) कुमाउनी स्फुट गद्य विधाओं की विशेषताओं तथा महत्त्व को समझ गए होंगे।

8.6 शब्दावली

लोकोक्ति	-	लोक प्रचलित बात या कथन
प्रकीर्ण	-	विविध
स्फुट	-	विविध, अन्य
लोकनाट्य	-	लोक नाटक
तुकबन्दी	-	स्वतः पदों के मिलान की प्रवृत्ति
व्यंग्यार्थ	-	व्यंग्य का अर्थ

सहज	-	स्वाभाविक
गूढ़ आख्यान	-	गहन भाव या रहस्यमय विचारधारा
प्रतीति	-	बोध

8. 7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.3 के उत्तर

- क - (1) मुहावरा
(2) कहावत
(3) लोकनाट्य
(4) कथातत्व

8.4 के उत्तर

- (1) मुहावरा
(2) कहावत
(3) तुकबन्दी
(4) पहेलियाँ

8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

- (1) पाण्डे, त्रिलोचन, कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य , पृ -328-343
(2) पोखरिया , डी.एस. , लोकसंस्कृति के विविध आयाम, पृ - 76- 78
(3) दुबे, हेमचन्द्र, कुमाउनी कहावतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन
(अप्रकाशित शोध प्रबंध) पृ- 36 -48

8.9 सहायक ग्रंथ सूची

- (1) जनपदीय भाषा साहित्य , डॉ. शेरसिंह विष्ट तथा डॉ. सुरेन्द्र जोशी,
अंकित प्रकाशन हल्द्वानी

-
- (2) कुमाउनी भाषा और साहित्य का उद्भव एवं विकास ,प्रो. शेर सिंह
बिष्ट, अंकित प्रकाशन हल्द्वानी (नैनीताल) 2006
-

8.10 निबंथात्मक प्रश्न

- (1) कुमाउनी लोकसाहित्य के क्षेत्र में कहावतों तथा मुहावरों के योगदान की विस्तृत चर्चा कीजिए।
- (2) कुमाउनी स्फुट रचनाओं पर एक सारगर्भित लेख लिखिए।